संस्थापक : योगयोगेश्वर अनन्तश्री चन्द्रमोहनजी महाराज

सिद्धयोग

योग सिद्धान्त एवं आध्यात्म का
प्रतिपादक मासिक

वर्ष : 41; अंक : 10
जनवरी, 2009

श्री सिद्धगुफा प्रकाशन
सवाँई-283202 (आगरा) उ.प्र.

अमृतकण

तपस्विभ्योऽधिको योगी ज्ञानिभ्योऽपि मतोऽधिकः।
कर्मिभ्यश्चाधिको योगी तस्माद्योगी भवार्जुन।।

हे अर्जुन! योगी पुरुष तपस्वी, ज्ञानी, कर्मी आदि सबसे श्रेष्ठ है; अतएव तू योगी बन जा।

• • •

योगिनामपि सर्वेषां मद्गतेनान्तरात्मना।
श्रद्धावान् भजते यो मां स मे युक्ततमो मतः।।

अन्य समस्त योगियों में जो अपने अन्तरात्मा को मुझ में लगाकर श्रद्धापूर्वक मेरा भजन करता है, मैं उसी को सर्वोत्तम योगी मानता हूँ।

• • •

युक्ताहारविहारस्य युक्तचेष्टस्य कर्मसु।
युक्तस्वप्नावबोधस्य योगो भवति दुःखहा।।

आहार-विहार, कर्मों की चेष्टा एवं शयन जागरण को युक्त रूप से करने वाले पुरुष का योग दुःखों को नाश करता है।

• • •

मां च योऽव्यभिचारेण भक्तियोगेन सेवते।
स गुणान् समतीत्यैतान् ब्रह्मभूयाय कल्पते।।

जो पुरुष अव्यभिचारी भक्तियोग के द्वारा मेरा सेवन करता है, वह गुणों को अतिक्रम कर ब्रह्मभाव को प्राप्त करने में समर्थ होता है।

सिद्धयोग

योग सिद्धान्तों का प्रतिपादक मासिक–पत्र

ध्यायं ध्यायं यदिह परमं ब्रह्म शुद्ध स्वभावम्
मर्त्योमृत्योर्मुख विवरतो, मुक्तिमाप्नोति सद्यः।
तत्प्राप्यर्थान् बहुतर विशदान् योगशास्त्रोपदेशान्
कल्याणां भवतु महतां सिद्धये सिद्धयोगः।।

अर्थ :— शुद्ध (निर्विकार) स्वभाव वाले परम ब्रह्म का ध्यान करते—करते मृत्यु के मुख में पड़ा हुआ मनुष्य शीघ्र ही मुक्ति को प्राप्त हो जाता है। उस मुक्ति की प्राप्ति के उपाय स्वरूप योग ध्यान शास्त्र के सिद्धान्तों की विस्तृत व्याख्या करने वाली ''सिद्धयोग'' नामक पत्रिका सत्पुरुषों के परम कल्याण की सिद्धि (प्राप्ति) में सक्षम व सहायक है।

वर्ष : 41 अंक : 10

ॐ आप्यायन्तु ममागानि वाक् प्राणश्चक्षुः श्रोतमथो बलमिन्द्रियाणि च सर्वाणि। सर्वं ब्रह्मोपनिषदं माहं ब्रह्म निराकुर्यां मा मा ब्रह्म निराकरोत्, अनिराकरणमस्त्वनिराकरणं मेऽस्तु। तदात्मनि निरते य उपनिषत्सु धर्मास्ते मयि सन्तु, ते मयि सन्तु।

([illegible])

हे परमात्मन्! मेरे सारे अंग, वाणी, नेत्र, श्रोत्र आदि सभी कर्मेन्द्रियाँ और ज्ञानेन्द्रियाँ, प्राणसमूह, शारीरिक और मानसिक शक्ति तथा ओज—सब पुष्ट एवं वृद्धि को प्राप्त हों। उपनिषदों में सर्वरूप ब्रह्म का जो स्वरूप वर्णित है, उसे मैं कभी अस्वीकार न करूँ और वह ब्रह्म भी मेरा कभी परित्याग न करें। मुझे सदा अपनाये रखें। मेरे साथ ब्रह्म का और ब्रह्म के साथ मेरा नित्य सम्बन्ध बना रहे। उपनिषदों में जिन धर्मों का प्रतिपादन किया गया है, वे सारे धर्म, उपनिषदों के एकमात्र लक्ष्य परब्रह्म परमात्मा में निरन्तर लगे हुए मुझ साधक में सदा प्रकाशित रहें, मुझ में नित्य निरन्तर बने रहें और मेरे त्रिविध तापों की निवृत्ति हो।

जनवरी 2009

श्री सिद्धगुफा योग प्रशिक्षण केन्द्र

सवाई (एत्मादपुर) आगरा

SIDDHYOG

HINDI MONTHLY

Propagating Yoga & Spirtual values

संस्थापक :

योग–योगेश्वर अनन्तश्री चन्द्रमोहन जी महाराज

सम्पादक :

आचार्य (डा.) दासलाल ब्रह्मचारी

संयुक्त सम्पादक

डॉ. विजय सिंह

प्रबन्ध सम्पादक :

समस्त योग प्रचार मण्डलों के अध्यक्ष एवं गुरु भाई–बहिन

अनुक्रमणिका

1.	विशेष लेख – योगयोगेश्वर अनन्तश्री चन्द्रमोहनजी महाराज	3
2.	सम्पादकीय	9
3.	खुशहाल जीवन कैसे जीयें? –डा. जे.पी. शर्मा	12
4.	अष्टांग योग –डा. ऋषिराम शर्मा	19
5.	भजन प्रभु रामलाल महिमा –मोती राम गर्ग	23
6.	संस्कार भुगतान–विशिष्ट विधि से –केशवदेव उपाध्याय	24
7.	श्रीअरविन्द का पूर्णयोग –श्री अनिलवरण राय	30
8.	योग का तात्पर्य और चरित्र–निर्माण –श्री अवेद्यनाथ जी	36
9.	[illegible]रिक शक्ति एवं चरित्र–निर्माण –डा. श्रीयोगेन्द्रनाथजी मिश्र	39

एक प्रति	: रु. 11.00
वार्षिक शुल्क	: रु. 130.00
द्विवार्षिक	: रु. 250.00
आजीवन (10 वर्षीय केवल)	: रु. 850.00

विशेष लेख

सिद्धों का शक्तिपात एवं उपाय प्रत्यय

योग-योगेश्वर अनन्तश्री चन्द्रमोहन जी महाराज

इससे पूर्व पिछले दो प्रकरणों में योगियों को अनुभूति-ज्ञान कराने वाले भव प्रत्यय एवं उपाय प्रत्यय इन दो प्रमुख कारणों का वर्णन किया गया था। भव प्रत्यय में साधक को जन्म से ही योग-ज्ञान की प्रतीति होने लगती है और उसे पौर्वदेहिकबुद्धि-संयोग मिल जाता है, जिसके फलस्वरूप उसे योग के चमत्कारिक अनुभव हो जाते हैं। यह भव प्रत्यय का परिणाम है। इसके अतिरिक्त-

श्रद्धा वीर्य स्मृति समाधि प्रज्ञापूर्वक इतरेषाम्।

इस सूत्र के अनुसार उपाय प्रत्यय का अवलम्ब लेने वाला योगी शनैः-शनैः दृढ़तर अभ्यास करता हुआ कालान्तर में प्रज्ञाविवेक को प्राप्त कर लेता है।

इसके अतिरिक्त एक और महान साधन है जो पुण्यकर्माजीवों को पुण्य प्रारब्ध के फलस्वरूप सिद्धों की अनुकम्पा से प्राप्त हुआ करता है। वह साधन इस प्रकार का है जिसे प्राप्त करके मनुष्य अपना जीवन सार्थक कर लेता है। उसका नाम है – **शक्तिपात योग** अथवा **सिद्धयोग**। यह योग मनुष्य को सिद्धानुकम्पा से ही प्राप्त होता है। रही बात यह कि साधक सिद्धयोग का कितना अधिकारी है, वह कब तथा कैसी कृपा प्राप्त करेगा? यह उसकी पात्रता पर निर्भर करता है। वैसे यह साधन इस प्रकार का है जो एक बार प्राप्त हो जाने पर साधक को मोक्ष द्वार तक खींचे ही चला जाता है। जब तक उसकी साधना पूर्ण नहीं हो जाती तब तक उसे बार-बार बुद्धिसंयोग मिलता रहता है। योग शिखोपनिषद् में ऐसा लेख मिलता है:-

ज्ञाननिष्ठो विरक्तो वा, धर्मज्ञो विजितेन्द्रियः।

बिना योगेन देवोऽपि, न मोक्षं लभते विधे।।

मनुष्य भले ही ज्ञाननिष्ठ हो, विरक्त हो, धर्मज्ञ हो या जितेन्द्रिय हो किन्तु बिना योग के उसे मुक्ति प्राप्त होती ही नहीं।

आवश्यकता इस बात की है कि मनुष्य पुरुषार्थी बना रहे न कि वह अलहड़, आलसी बनकर अपने आपको त्यागी घोषित कर दे। जो लोग बाह्योपचारों को त्याग कर अपने आपको त्यागी घोषित करते हैं वे यथार्थ त्यागी नहीं हैं, प्रत्युत दम्भी हैं। क्योंकि उनकी इन्द्रियाँ और मन कुछ न कुछ हरकतें करते ही रहते हैं। इन लोगों के लिये भगवान श्रीकृष्ण चन्द्र ने गीता में अपने मुखारविन्द से स्पष्ट शब्दों में कहा है:-

कर्मेन्द्रियाणि संयम्य य आस्ते मनसा स्मरन्।

इन्द्रियार्थान्विमूढ़ात्मा मिथ्याचारः स उच्यते।।

कर्मेन्द्रियों पर नियन्त्रण करके जो लोग मन से विषयों का चिन्तन करते रहते हैं वे लोग दम्भी कहलाते हैं।

अतः मनुष्य को चाहिए कि वह कर्मफल की इच्छा न रखता हुआ सतकर्मों को करता जाये जिससे उत्तरोत्तर उसकी पुण्यवृद्धि होती रहे। इस विषय में श्रीभगवान ने अपने श्रीमुख से कहा है:

यज्ञोदानं तपः कर्म न त्याज्यं कार्यमेव तत्।

यज्ञोदानं तपश्चैव पावनानि मनीषिणाम्।।

यज्ञ, दान एवं तप आदि कर्म मनुष्य को पवित्र करने वाले हैं। अतः ये छोड़ने नहीं चाहिए प्रत्युत् निष्काम भाव से कर्त्तव्य बुद्धि से करते ही रहना चाहिए।

इस प्रकार जो लोग निष्काम कर्मयोग का अभ्यास करते हैं एवं शुभ कर्मों का आचरण करते हैं वे लोग अवश्य ही सिद्धानुग्रह के भाजन हो जाते हैं। इसके अतिरिक्त जो लोग अपने मन में वेदान्त की धारणाओं को दृढ़ करते रहते हैं, उनकी पुण्यवृद्धि हो जाने के पश्चात् उन्हें भी सिद्ध संगति प्राप्त हो जाती है। **योगशिखोपनिषद** में कहा गया है:-

देहान्ते ज्ञानिभिः पुन्यात्पापाच्च फलमाप्यते।

ईदृशं तु भवेत्तद् भुक्त्वा ज्ञानी पुनर्भवेत्।।

पश्चात् पुण्येन लभते सिद्धेन सह संगतिम्।

ततः सिद्धस्य कृपया योगी भवति नान्यथा।।

ततो नश्यति संसारो नान्यथा शिवभाषितम्।।

निष्काम कर्मयोग के अभ्यास से विविध प्रकार के पुण्यों को उपार्जित करता हुआ व्यक्ति उत्कृष्ट पुण्य बढ़ जाने पर अवश्य ही सिद्धसंगति को प्राप्त कर लेता है और फिर सिद्धानुकम्पा से वह योगी बनता है। जब तक मनुष्य सिद्धानुग्रह भाजन नहीं बन जाता तब तक वह मोक्ष के द्वार तक नहीं पहुँच पाता।

हमारे शास्त्रों में सिद्धों की भी दो श्रेणियाँ मानी गई हैं। एक श्रेणी वह है जिसमें योगी दृढ़तर अभ्यास करते करते सिद्धियों को पा जाते हैं और '**कर्तुमकर्तुमन्यथाकर्तुम्**' की सामर्थ्य वाले सिद्ध बन जाते हैं। दूसरे सिद्ध वे लोग हैं जो अनादिकाल से ही सिद्ध हैं, जिनकी सिद्धि में कभी कोई अन्तर नहीं पड़ता। ये लोग **अनादिकालीन महासिद्ध** कहलाते हैं। मनुष्य किसी भी प्रकार के अनुग्रह का भाजन हो, सिद्ध संगति परम आवश्यक है।

हमारा इतिहास यह बतलाता है कि यहाँ के भक्त समुदाय ने येन केन प्रकारेण सिद्धानुग्रह को प्राप्त करके ही अपने को सफल बनाया। इसलिए साधक के लिए सिद्धानुग्रह की प्राप्ति परम आवश्यक है। चाहे वह अनादि सिद्ध ब्रह्मा, विष्णु, शिव आदि का अनुग्रह भाजन बने या हिमालय के किसी योगिराज की शरण प्राप्त करें। इस प्रकार सिद्धानुग्रह को प्राप्त करके मनुष्य मोक्ष द्वार की ओर उत्तरोत्तर बढ़ता ही चला जाता है।

कठोपनिषद् में कहा गया है:-

नायमात्मा प्रवचनेन लभ्यो, न मेधया न बहुना श्रुतेन।

यमैवेष वृणुते तेन लभ्या, तस्यैव आत्मा विवृणुते तनूं स्वाम्।।

यह आत्मा न प्रवचन करने से, न बुद्धि कौशल से और न अत्यधिक शास्त्र श्रवण से ही प्राप्त होता है प्रत्युत ''**यमेव एष वृणुते तस्यैव आत्मा विवृणुते तनूं स्वाम्**'' अर्थात् जिसको यह स्वयं स्वीकार करता है उसी के द्वारा इस आत्म-तत्व की प्राप्ति हुआ करती है। जिसका यह स्वयं वरण कर लेता है उसके शरीर को अपना मन्दिर बना लेता है। स्वयं वरण हो जाने के बाद मनुष्य का मोक्ष अवश्यम्भावी है। जिस साधक का स्वयं वरण हो चुका है उसे इधर उधर भटकने की आवश्यकता नहीं रहती, क्योंकि उसका शरीर परमात्मा का घर हो

जाता है, उसमें वह अभेद रहा करता है। इन्हीं भावों को गोस्वामी तुलसीदास जी ने निम्नांकित चौपाई में स्पष्ट किया है:-

सोई जाने जेहि देहु जनाई। जानत तुम्हहिं तुम्हहिं ह्वै जाई।।

यह तो निर्विवाद सत्य है कि सिद्धानुग्रह को प्राप्त कर मनुष्य अवश्य ही कृतार्थ हो जाता है एवं अपने चरम लक्ष्य को प्राप्त कर लेता है। बहुत से लोग इस प्रकार की बातें करते दिखाई देते हैं कि ''भाई! यह तो ठीक है कि तुम्हारे यहाँ गुरुदेव की अनुकम्पा से ध्यान लग जाता है, किन्तु कुछ दिन बाद ही उनकी स्थिति जाती रहती है, इस प्रकार के शक्तिपात से क्या लाभ? जिससे दस-पाँच दिन अच्छी-अच्छी अनुभूतियाँ होने के बाद साधक खाली हो बैठे, जो क्षणिक आनन्द दिखाकर शान्त हो जाये।''

इस बात को हम ऊपर समझा चुके हैं कि सिद्धानुग्रह ही वस्तुत: मनुष्य के परम श्रेय का मुख्य साधन है, किन्तु साधक को इस बात का विशेष रूप से ध्यान रखना चाहिए कि वह अपनी नियमानुवर्तिता में बिल्कुल पक्का रहे। उपाय प्रत्यय में बताये गए सभी नियमों का यथार्थ रूप में पालन करे। इसी प्रकार का आदेश अखिल लोक पावन जगदात्मा श्रीकृष्णचन्द ने गीता में दिया है:-

युक्ताहार विहारस्य युक्त चेष्टस्य कर्मसु।

युक्तस्वप्नावबोधस्य योगो भवति दु:खहा।।

जिसका आहार एवं विहार संयमित है, जो अपनी समस्त चेष्टाओं पर पूरा नियन्त्रण रखता है, जो ठीक समय पर सोता है और ठीक समय पर उठ जाया करता है उसके लिए ही योग दु:खविनाशक और सुख-समृद्धि का दाता हुआ करता है। अत: सिद्धयोग के प्रत्येक विद्यार्थी को चाहिये कि वह जगदात्मा द्वारा आदिष्ट उपरोक्त नियम को 'उपाय-प्रत्यय' के अन्तर्गत समझे और उसका पूर्णतया पालन करे। जो मनुष्य नियमानुवर्तिता का पक्का नहीं है, सोने के समय पर सोता नहीं, जागने के समय जागता नहीं, नियत समय पर भोजन नहीं करता तथा जिसकी कोई भी चेष्टा साधना के अनुकूल नहीं है तो समझ लेना चाहिए कि वह परमात्मा की कृपा का बहुत दुरुपयोग कर रहा है और अपने बहुमूल्य समय को व्यर्थ खो रहा है।

श्रीमद्‌भागवत के ग्यारहवें स्कन्ध में भगवान ने अपने श्रीमुख से कहा है

नृदेहमाद्यं सुलभं सुदुर्लभं, प्लवं सुकल्पं गुरुकर्णधारम्।
मयानुकूलेन नभस्वतेरितं, पुमान् भवाब्धिं न तरेत् स आत्महा।।

जिस पुण्यकर्मा जीव को अत्यन्त दुर्लभ मानव शरीर जो कि भवसागर को पार करने के लिए एक सुदृढ़ नौका के समान है, सुलभता से मिल जाये और फिर कर्णधार पूज्य गुरुदेव सिद्धयोग के दाता मिल जायें, अनुकूल वायु के रूप में ईश्वर का अनुग्रह प्राप्त हो जाये फिर भी यदि वह मनुष्य संसार सागर को तरने का प्रयास नहीं करता तो वह एक प्रकार का आत्म-हत्यारा है।

अतः जो लोग स्वस्थ, सुन्दर और सुदृढ़ शरीर वाले हैं, जो सिद्धानुग्रह के रूप में सामर्थ्यवान गुरू की पूर्ण कृपा प्राप्त कर चुके हैं तथा जिन्हें भगवत् कृपा से सभी साधन उपलब्ध हैं फिर भी यदि वे आलसियों की तरह अपना जीवन व्यतीत करते हैं तो निश्चय ही वे अपने अमूल्य समय को व्यर्थ खो रहे हैं।

उपाय प्रत्यय के अन्तर्गत उन्हीं उपायों का निर्देश किया गया है जिनका अवलम्ब लेना प्रत्येक साधक के लिए निहायत जरूरी है।

ईश्वर के एवं गुरुदेव के परमानुग्रह को प्राप्त करके जो साधक नियमानुवर्तिता का पक्का है, अपने अभ्यास में दृढ़ता से लगा रहता है वह अवश्य ही परम श्रेय को प्राप्त कर लेता है। जो लोग इस प्रकार अभ्यास नहीं करते वे लोग उस महान कृपा को प्राप्त करके भी यथेष्ट लाभ से वंचित रह जाते हैं।

मुझे एक दृष्टान्त याद आ रहा है। सिद्धानुग्रह-भाजन एक व्यक्ति एक स्थान पर ध्यान योग का अभ्यास किया करता था। वह जब भी ध्यान में बैठता अनायास ही उसका ध्यान लग जाया करता था और बड़ी-बड़ी दिव्य अनुभूतियाँ जारी हो जाया करती थीं। उसके मन में यह विचार पैदा हुआ कि इस ध्यान योग में कोई विशेष प्रयत्न तो करना नहीं पड़ता, केवलमात्र थोड़ा सा चिन्तन किया और अनुभूतियाँ जारी हो गई। इसमें कोई खास तत्व की बात नहीं है। जब भी हम चाहेंगे ध्यान लगा लेंगे। यह विचार कर उसने अपना अभ्यास छोड़ दिया। श्री गुरुदेव के अनुग्रह से उसका मन इस प्रकार का अभ्यासी बन गया था कि जब भी वह अभ्यास करता अनुभूतियाँ जारी हो जाया करतीं। अभ्यास छोड़ने के एक महीने पश्चात उसने पुनः मन को एकाग्र करके देखा तो उसी प्रकार की एकाग्रता हो गई और उसका ध्यान लग गया। इस

घटना से उसका यह विश्वास दृढ़ हो गया कि ध्यानाभ्यास में नियमानुवर्तिता का पालन करना जरूरी नहीं है। मैं जब भी अभ्यास में बैठूँगा तभी मुझे ध्यानानुभूतियाँ हो सकती हैं।

यह सोचकर उसने लम्बे समय के लिए अपना ध्यानाभ्यास छोड़ दिया और लौकिक कार्यों में उलझा रहा। परिणामस्वरूप उसकी ध्यानस्थिति जाती रही और वह खाली का खाली रह गया।

यह घटना योग साधकों के लिए एक प्रकार की चेतावनी है। मैं अपने सिद्ध-योग के विद्यार्थियों को यह संकेत कर देना चाहता हूँ कि उनको अपने अभ्यास में किसी प्रकार की कमी नहीं आने देनी चाहिए। प्रत्युत् उत्तरोत्तर अभ्यास को बढ़ाते ही रहना चाहिए। जिससे गुरुदेव द्वारा किया गया शक्तिपात उनके परम श्रेय का हेतु बन सके। साथ ही भर्तृहरि जी के निम्नांकित श्लोक को बार- बार पढ़ना एवं मनन करना चाहिए:-

यावत्स्वस्थमिदं कलेवरगृहंयावच्च दूरे जरा,
यावच्चेन्द्रिय शक्तिरप्रतिहता यावत्क्षयो नायुषः।
आत्मश्रेयसि तावदेव विदुषा कार्यः प्रयत्नो महान्,
प्रोद्दीप्ते भवने च कूपखननं प्रत्युद्यमः कीदृशः।।

●●●

भगवान् के पवित्र, सुन्दर और मनोहर नामों का तथा उनके अर्थों का ज्ञान और उनकी अलौकिक लीलाओं का लज्जा छोड़कर कीर्तन करते हुए श्रेष्ठ भक्त को आसक्तिरहित होकर पृथ्वी पर विचरण करना चाहिए।

जीव द्वारा गर्भावस्था में की गई प्रतिज्ञायें

आचार्य (डॉ.) दासलाल ब्रह्मचारी

जीव को गर्भावस्था तक आने में कई प्रकार के कष्टमय यातनाओं से गुजरना पड़ता है। छान्दोग्य उपनिषद् में इसका विशद् विवेचन मिलता है। उसके अनुसार जो जीव पुनरावर्तन वाले होते है, वे आकाश मण्डल में मेघ से सुयक्त होते है। वायु से मिलकर मेघ पृथ्वी पर वर्षा करते है। उन्ही वर्षा के कणों का आश्रय लेकर पृथ्वी पर गिरते है। पृथ्वी पर धान, जौ, गेहूँ आदि उत्पन्न होने वाली फसलों में आश्रित रहते है। उस अन्न को मनुष्य खाते है। मनुष्य गृहस्थ आश्रम वाले होते है। स्त्री पुरुष के सम्पर्क से धातु के आश्रय से जीव गर्भ में प्रवेश पाता है। पिता की जैसी आकृति होती है जीव भी उसी आकृति का होता है। अचेतन अवस्था वाले जीव स्थावर योनि को प्राप्त हो जाते है। वृक्ष आदि स्थावर योनि में रहते है। भोग काल की समाप्ति पर पुनः कभी सचेतन योनि में आ जाते है ये सब 'अनुशायी जीव' कहलाते है। इन जीवो में जो अच्छे संस्कार व आचरण वाले रहे है वे ब्राह्मण, क्षत्रिय व वैश्य योनि में जन्म पा जाते है। जो अशुभ व पाप आचरण वाले होते है वे कुत्ते, शूकर अथवा चाण्डाल की योनि को प्राप्त होते है।

"तद्य इह रमणीय चरणा अभ्याशो ह यन्ते रमणीयां योनिमापद्येरन् ब्राह्मण योनि वा क्षत्रिय योनि व वैश्य योनि वा।"

(छान्दो, अध्याय 5 खंड–10)

जिनमें क्रूरता, हिंसा, कपट और असत्यता नही होती है वे ही 'शुभानुशयी जीव' होकर उत्तम योनि को प्राप्त होते है, जो अकृतात्मा है वे अशुभ व तमोप्रधान योनि को प्राप्त होते है।

श्री मद्‌भागवत् पुराण के तृतीय स्कन्ध में भी भगवान कपिल ने इस बात की पुष्टि की है। जिसके अनुसार जीव पुरुष के धातु (वीर्य) कणों का आश्रय लेकर स्त्री के उदर में प्रवेश पाता है। दस दिन में यह जीव बेर की गुठली के बराबर का हो जाता है बढ़ते–बढ़ते तीसरे माह में उसके नख, अस्थि, चर्म, लिङ्ग व शरीर के छिद्र बनने शुरु हो जाते है। चौथे मास में सप्त धातुओं का निर्माण होता है। पाँचवे माह में उसे भूख प्यास लगने लगती है। छठे माह में जरायु से वेष्ठित हो जाता है और दाहिने कुक्षि में घूमने लगता है। माता के खाये, पीये आहार से उसका शरीर पोषित होकर बढ़ने लगता है। कीड़ों के बीच में पड़ा हुआ जीव कृमियों के काटने से क्षत–विक्षत हो जाता है और बार–बार बेहोश हो जाता है। माता कड़वे, तीक्ष्ण

लवण एवं अम्ल युक्त भोजन करती है तो उसके शरीर में अत्यन्त वेदना होने लगती है। जैसे पिंजरे में पक्षी होता है वैसे ही यह जीव बंधा हुआ कष्ट पाता है। सातवें माह में उसे दिव्य दृष्टि मिलती है अपने पिछले सौ जन्मों का उसे बोध हो जाता है। उस समय वह परम प्रभु से बार-बार प्रार्थना करता है कि इस घोर दुःख से मुझे छुड़ा लो। मैं जन्म पाकर आपकी शरणागति में रहकर आप की आराधना करूंगा। प्रभु कृपा से गर्भ से बाहर आ जाने पर वह वैष्णवी वायु के स्पर्श पाते ही सब कुछ प्रतिज्ञायें भूल जाता है। धीरे-धीरे संसार के लोगों में हिल-मिल जाता है और परमार्थ पथ से च्युत हो जाता है। गर्भावस्था में प्राप्त स्मृति विलुप्त हो जाती है और पिछले कष्टों को भी एक प्रकार से भूल सा जाता है।

गर्भोपनिषद में भी इसी प्रकार की बात मिलती है। जीव गर्भ में पड़ा हुआ नाना दुःखों से संतप्त हो जाता है। वह नाना प्रकार से भगवान की स्तुति करता है तथा प्रतिज्ञायें करता है।

वह कहता है-

यदि योन्या प्रमुच्येऽहं तत प्रपद्ये नारायणम्
अशुभक्षयकर्तारम् फल मुक्ति प्रदायकम्।।

यदि मैं अब की बार इस घोर नरक से बाहर निकल गया, तो मैं भगवान नारायण की आराधना करूंगा। वे ही अशुभ कर्मों का नाश करने वाले तथा क्लेशों से छुड़ा कर मुक्ति प्रदान करने वाले हैं।

आगे फिर कहता है-

यदि योन्या प्रमुच्येऽहं तत् प्रपद्ये महेश्वरम्।
अशुभ क्षय कर्तारम् फल मुक्ति प्रदायकम्।।

यदि मैं इस बार योनि से बाहर निकल आया तो भगवान महेश्वर की शरण लूँगा जो पापों का नाशकर मुक्ति प्रदान करने वाले हैं।

पुनः कहता है-

यदि योन्या प्रमुच्येऽहं सांख्ययोगमभ्यसे।
अशुभ क्षयं कर्तारम् फल मुक्ति प्रदायकम्।।

यदि मैं अब की बार योनिमुख से बाहर निकल आया तो मैं सांख्य एवं ध्यान योग का अभ्यास करूंगा, जिससे मेरे सारे पाप नष्ट हो जायेंगे और मैं मुक्ति को प्राप्त हो जाऊंगा।

इस प्रकार से उपनिषद् एवं अन्य धर्म शास्त्रों में जीव की गर्भावस्था में की गई प्रतिज्ञाओं का वर्णन मिलता है। मनुष्य इस पृथ्वी पर आकर जन्म के साथ ही सब कुछ भूल जाता है। धीरे-धीरे संसार का ज्ञान होने लगता है और संसार के इस झूठ, कपट, हिंसा, नास्तिकता भरे संसार में संसारी लोगों की भाँति ही पाप कर्मों में लिप्त हो जाता है और पिछले प्राप्त समस्त यातनाओं को भूल जाता है और इस दुर्लभ देह के महत्व को नहीं समझता तथा

दुःखों से छूटने का कोई उपाय भी नहीं ढूँढता। धीरे–धीरे मलिन अन्तःकरण हुआ यह जीव **'पुनरपि जननम् पुनरपि मरणं पुनरपि जननी जठरेशयनम्'** की उक्ति के अनुसार बार–बार नारकीय योनियों में घोर दुःख उठाता रहता है।

इसलिए हर विचारशील व्यक्ति को इस अत्यंत दुर्लभ मानव देह के मूल्य को समझ कर सब पापों का प्रध्वंस करने वाले गोविन्द एवं गुरुदेव की शरणापन्न होकर मुक्ति के लिए प्रयत्नशील रहना चाहिए।

●●●

निरर्थक ज्ञान

ऐसे ज्ञान का कोई लाभ नहीं, जिसके साथ बुद्धि और विवेक न हो।

रामकृष्ण परमहंस ने अपने शिष्यों से वार्तालाप में एक बार बताया कि ईश्वर द्वारा बनायी गयी इस सृष्टि के कण–कण में परमेश्वर का वास है। अतः प्रत्येक जीव के लिए हमें अपने मन में आदर मन में आदर एवं प्रेम का भाव रखना चाहिए।

एक शिष्य ने इस बात को मन में बैठा लिया। कुछ दिन बाद वह कहीं जा रहा था। उसने देखा कि सामने से एक हाथी आ रहा है। हाथी पर बैठा महावत चिल्ला रहा था–सामने से हट जाओ, हाथी पागल है। वह मेरे काबू में भी नहीं है।

शिष्य ने यह बात सुनी, पर उसने सोचा कि गुरुजी ने कहा था कि सृष्टि के कण–कण में परमेश्वर का वास है अतः इस हाथी में भी परमेश्वर होगा। फिर वह मुझे हानि कैसे पहुँचा सकता है? यह सोचकर उसने महावत की चेतावनी पर कोई ध्यान नहीं दिया।

जब वह हाथी के निकट आया, तो परमेश्वर का रूप मानकर उसने हाथी को साष्टांग प्रणाम किया। इससे हाथी भड़क गया। उसने शिष्य को सूंड में लपेटा और दूर फेंक दिया। शिष्य को बहुत चोट आयी। वह कराहता हुआ रामकृष्ण परमहंस के पास आया और बोला–आपने जो बताया था, वह सच नहीं है। यदि मुझमें भी वही ईश्वर है, जो हाथी में है, तो उसने मुझे फेंक क्यों दिया?

परमहंस जी हँस कर पूछा– क्या हाथी अकेला था? शिष्य ने कहा–नहीं, उस पर महावत बैठा चिल्ला रहा था कि हाथी पागल है, उसके पास मत जाओ।

इस पर परमहंस ने कहा– पगले, हाथी परमेश्वर का रूप था, तो उस पर बैठा महावत भी तो उसी का रूप था। तुमने महावत रूपी परमेश्वर की बात नहीं मानी, इसलिए तुम्हें हानि उठानी पड़ी।

कथा का अभिप्राय यह है कि बड़ों की बात में निहित विचार को ग्रहण करना चाहिए। केवल शब्दों को पकड़ने से काम नहीं चलता।

खुशहाल जीवन कैसे जीयें?

डा. जे.पी. शर्मा (हिमाचल प्रदेश)

संसार का हर जीव सुख की जिन्दगी जीना चाहता है। ऐसा भला कौन है? जो सुख नहीं चाहता। इसीलिए प्राणी हर पल दौड़ धूप करता नजर आता है। सुख क्या है? इस पर विचार करना आवश्यक है। आराम की जिन्दगी जीना ही सुख कहा जाता है। परिश्रम तो कोई जीव नहीं करना चाहता, अतः कम से कम श्रम करके अधिक से अधिक उपलब्धि प्राप्त कर खुशहाल जीवन जीना ही सुख का द्योतक है। प्रायः सुख की प्राप्ति के लिए हर व्यक्ति हर पल दौड़ भाग में लगा रहता है, परन्तु सुख की प्राप्ति फिर भी नहीं मिलती। सुख मृगमरीचिका ही बना रहता है। क्या कभी आपने सोचा है, ऐसा क्यों होता है? आइये जरा खुशहाल जीवन जीने का आधार तलाश करें तथा आनन्दित हो जायें, सच्चे सुख का स्रोत तथा निदान पाकर।

मेरे विचार से सच्चे सुख का स्थाई आधार है– **'आत्मसंयम'**। संयम शब्द सुनते ही लोग समझने लगते हैं कि यह तो साधु, सन्तों, महात्माओं, त्यागी तथा वैरागियों का काम है। हम जैसे साधारण, घर गृहस्थी वालों को संयम से भला क्या काम है? परन्तु यह समझना सर्वथा असत्य है। सत्य तो यह है कि संयम की आवश्यकता गृहस्थ, विरक्त, स्त्री, पुरुष, वृद्ध, नौजवान, बालक सब को है। क्योंकि सभी लोग सुख से जीना चाहते हैं। आध्यात्मिक उन्नति के लिए तो संयम की अति आवश्यकता होती है। व्यावहारिक जीवन को मधुर, सरस और सुखी बनाने के लिए पारस्परिक प्रेम, एकता, समता, सहयोग, सद्भाव बनाये रखने के लिए संयम की अति आवश्यकता होती है।

महर्षियों का कथन है कि जीवन का परम प्रयोजन परमार्थिक उन्नति है, परन्तु जिसके जीवन का व्यावहारिक पक्ष सुव्यवस्थित एवं सन्तुलित नहीं है तथा जिसका तन–मन रोगी है तथा दुर्बल है, वह परमार्थिक उन्नति कैसे कर सकता है? रोग व्याधियों से बचे रहकर स्वस्थ तथा नीरोग बने रहने के लिए संयम की अत्यन्त आवश्यकता होती है। सन्तुलित तथा मधुर व्यवहार बनाये रखने के लिए मुख्य रूप से जिन बातों पर संयम की आवश्यकता है, उन बिन्दुओं पर गौर करने की आवश्यकता है–

1. प्रातःकाल **सूर्योदय से पूर्व जागना**– अंग्रेजी में कहावत है– **''अर्ली टू बैड, अर्ली टू राइज, मेक्स दी मैन हैल्दी, वैल्दी एण्ड वाइज''** अतः रात को जल्दी सोयें तथा सुबह सूर्योदय से पूर्व जाग जायें। ऐसा करने से मनुष्य स्वस्थ, धनवान तथा विद्वान बनता है। सूर्योदय से पूर्व जागरण से व्यक्ति प्राणवायु का अधिक से अधिक उपयोग करता है। सुबह के चार बजे से सूर्योदय तक ब्रह्ममुहूर्त कहा जाता है। सुबह जाग कर अधिक से अधिक पानी पीयें

जिससे शौच साफ होगा तथा स्वस्थ रहेंगे। वात–पित्त के दोषों से मुक्त रहेंगे।

2. समुचित व्यायाम करें– नित्य कर्म से निवृत्त होकर खुली हवा में घूमें। प्रातःकाल की बेला में घूमने का बड़ा महत्व है। घूमते हुए अपने मन को विचारों से शून्य रखें। घूमते समय बातचीत न करें तथा मुँह बन्द करके नासिका से श्वास–प्रश्वास करें। घूमने वाला स्थान शान्त, स्वच्छ तथा आबादी से दूर का हो तो अच्छा रहता है। कम से कम आधा घंटा अवश्य घूमें। घूमने से शरीर स्वस्थ तथा चुस्त बना रहता है। उद्यान, बाग–बगीचा, नदी का किनारा घूमने की उपयुक्त स्थान होते हैं। अगर सम्भव हो तो योगासन तथा प्राणायाम अपने शरीर की आवश्यकता तथा क्षमतानुसार अवश्य करें। इससे आपका स्वास्थ्य ठीक बना रहेगा।

3. शाकाहारी भोजन अपनायें– विश्व के अधिकांश विद्वानों का मानना है कि भीषण बीमारियाँ जैसे– कैंसर, ह्रदय रोग, किडनी रोग आदि को रोकने में शाकाहारी भोजन का अधिक योगदान है। वैसे भी नैतिकता, प्राकृतिक जीवन तथा आध्यात्मिक दृष्टिकोण से शाकाहारी भोजन सर्वोत्तम है। ध्यान रखें कि हमारे भोजन में मौसम के अनुसार खाद्य सामग्री सन्तुलित मात्रा में रहे। भोजन में प्रोटीन, कार्बोहाइड्रेट, वसा, विटामिन तथा खनिज पदार्थ उचित मात्रा में होने चाहिए। निरामिष भोजन करना मानवता तथा प्राकृतिक सन्तुलन के विरुद्ध है।

सन्तुलित आहार प्रति 100 ग्राम में प्रतिशत मात्रा

खाद्य वस्तु		प्रोटीन	खनिज लवण	कार्बोहाइड्रेट	कैलारी
मूँग	शाकाहारी	24.0	3.6	56.6	334
सोयाबीन		43.2	4.6	20.9	432
मूँगफली		31.9	2.3	19.3	549
सूखा दूध		38.3	6.8	51.0	357
अंडा	माँसाहारी	13.3	1.9	–	173
मछली		22.6	0.8	–	91
मीट (बकरा)		18.5	1.3	–	194

जहाँ तक संभव हो सुबह के नाश्ते में हल्का भोजन करें तथा फलों की मात्रा का ध्यान रखें। सूप इत्यादि की जगह मौसमी फलों का भरपूर सेवन करें।

4. खाने–पीने में संयम रखें– भोजन जीवन की आवश्यकता है तथा भोजन जीवनरूपी इंजन का ईंधन है, इसके बिना जीवन जवाब देने लगता है, जैसे गाड़ी का इंजन बिना डीजल अथवा पैट्रोल के नहीं चलता उसी प्रकार भोजन के बिना मनुष्य जीवित नहीं रह सकता। परन्तु

खाने-पीने पर संयम बरतने की आवश्यकता होती है। उल्टा सीधा भोजन अनाप-शनाप, रोगों को निमंत्रण देना है। मात्रा से अधिक खाने से भोजन पचने की समस्या खड़ी हो जाती है। अतः भोजन में संयम का अर्थ है, उचित समय पर, उचित ढंग से, उचित मात्रा में, सात्विक तथा सुपाच्य पवित्र भोजन करें। भोजन भूख लगने पर ही करें असमय तथा आवश्यकता से अधिक भोजन करने से पाचन तंत्र खराब होने लगता है तथा धीरे-धीरे शरीर रोगी बन जाया करता है। अपनी जिव्हा पर संयम रखें। केवल स्वाद के लिए भोजन कदापि न करें।

5. अपनी वाणी पर संयम रखें– वाणी मनुष्य के लिए प्रकृति का वरदान है। प्राणी जगत में केवल मनुष्य के पास ही यह साधन उपलब्ध है, परन्तु वाणी का सदुपयोग कोई-कोई ही करता है। अधिकांश तो इसका दुरुपयोग ही करते हैं तथा दूसरों को दुःखी करते हैं। असत्य वचन, कटुवचन, अश्लील, निन्दात्मक, असामयिक तथा अनावश्यक बातें नहीं करनी चाहिए, बल्कि सदैव सत्य, मधुर, प्रिय, विनम्र, हितकर वाणी का प्रयोग करना ही उचित होता है। सन्त कबीर ने वाणी के बारे में कहा है-

बोली तो अनमोल है, जो कोई जाने बोल।
हिये तराजू तोल के, तब मुख बाहर खोल।।
ऐसी बानी बोलिये, मन का आपा खोय।
औरन को शीतल करे, आपहुँ शीतल होय।।
रसना ऐसी बावरी, कहि गई सर्ग पाताल।
आप कहि भीतर गई, जूता सहे कपाल।।

6. स्वार्थ में संयम रखें– मनुष्य जन्मजात ही स्वार्थी है, बिना स्वार्थ के किसी से बात ही नहीं करता। उसकी इच्छा रहा करती है, उसे सबसे पहले, भरपूर मात्रा में उपयोग की वस्तुएँ प्राप्त हों। इस प्रकार की भावनाओं से परस्पर कलह, द्वेष, दुःख और असन्तोष पैदा होते हैं। सन्त तुलसीदास ने कहा है- "स्वारथ लोग करहि सब प्रीती"। अतः आपस में सरसता, एकता, प्रेम, सहयोग, माधुर्यता बनाये रखने के लिए स्वार्थ पर संयम का अंकुश बनाये रखना आवश्यक है। जिससे प्राणी का मन सुखी तथा सन्तुष्ट रहेगा तथा दूसरे भी सुखी और सन्तुष्ट नजर आयेंगे। शास्त्रों में इसी कारण 'परहित' की भावना पर जोर दिया गया है। स्वार्थ का पोषण कदापि उचित नहीं है।

7. कामनाओं पर नियंत्रण रखें– अनादि काल से ही मनुष्य कामनाओं का घर है। कामनाओं की पूर्ति एक जन्म में क्या, अनेकों जन्मों में भी पूरी नहीं की जा सकती। अतः प्रत्येक कामना की पूर्ति करना असम्भव है तथा कामनाओं की पूर्ति के लिए हठ करना भी नितान्त बेवकूफी है। मनुष्य के दुःखों का कारण कामनायें ही हैं। इच्छा पूर्ति के लिए मनुष्य रात-दिन पागलों की भांति दौड़-धूप करता रहता है। अतः व्यवहार को सन्तुलित व मधुर

बनाये रखने तथा घर परिवार के वातावरण को शान्तिमय बनाये रखने के लिए अपनी कामनाओं पर संयम रखना आवश्यक है। मनुष्य इच्छा पूर्ति के लिए आपाधापी किया करता है, परन्तु फिर भी उसकी इच्छायें पूर्ण नहीं होती और न कभी होंगी। अतः हमें अनावश्यक इच्छाओं का दमन करना ही चाहिए। यही वास्तविक खुशहाली का अमोघ साधन है। क्योंकि कामनायें नित पल-पल पर बनती रहती है। एक पूरी हो जाये तो दूसरी जाग उठती है।

8. काम में संयम बरतें– बिना परिश्रम तथा पुरुषार्थ के कुछ हासिल नहीं होता। अतः अपनी इच्छा शक्ति, श्रेणी, योग्यता तथा समयानुसार पुरुषार्थ करना ही चाहिए। परंतु वह काम किस काम का जिससे जीवन का आराम, सुख चैन ही नष्ट हो जाये, और प्राप्त धन सुख और सुविधा का उपभोग न किया जा सके। काम करना तो जरूरी है किंतु उसमें संयम की आवश्यकता है। ध्यान रहे कि रात-दिन की दौड़-धूप करके खूब धन दौलत और पदार्थ इकट्ठे कर लेने से मनुष्य सुखी नहीं हो जाता। जीवन में धन का एक सीमा तक ही स्थान है किंतु आवश्यकता है आपके सद्व्यवहार की। परिजन, मित्र, नाते-रिश्तेदार आदि चाहते हैं कि आप उनके लिये जीवन के कुछ पल निकालें, उनके साथ बैठें, बात करें, हँसे बोलें। अतः काम तथा परिजनों के साथ संयम बनाये रखें।

9. व्यवहार कुशल बनें– मनुष्य को जीवन में पग-पग पर एक दूसरे के साथ व्यवहार करना पड़ता है। व्यवहार सब के साथ सरस, माधुर्यता पूर्ण हो, इस बात का सदैव ध्यान रखना उचित है। जैसा आप दूसरे के साथ व्यवहार करेंगे, वैसा ही आप उससे पायेंगे। सभी लोग समान रूप से व्यवहार कुशल नहीं होते, ऐसी परिस्थितियों में प्रेम, समता, सहिष्णुता, क्षमा आदि का व्यवहार करके एक दूसरे को निभाया जाता है तथा समाज, घर तथा परिवार को टूटने से बचाया जा सकता है। मन का स्वभाव है कि जहाँ थोड़ी सी अनुकूलता मिली नहीं कि राग पैदा हो जाता है तथा जहाँ थोड़ी सी प्रतिकूलता मिलती है, वहीं व्यक्ति द्वेष करने लगता है। अतः राग-द्वेष की दुःखदायी स्थिति से बचने का प्रयास करते रहना चाहिए। कभी-कभी व्यवहार में गोपनीयता भी रखनी पड़ती है। परंतु अनावश्यक गोपनीयता से आपस में सन्देह होने लगता है। अतः व्यवहार में पारदर्शिता तथा खुलपने को बनाये रखना चाहिए जिससे आपसी विश्वास दृढ़ हो जाता है।

10. मित्रता में संयमवर्ती– संसार में हर व्यक्ति का कोई न कोई मित्र हुआ करता है जिसके साथ बैठता है, बातें करता है, दुःख सुख बांटता है, अपने मन की बातें कहता है तथा विशेष परिस्थितिओं में राय मांगता है। मित्रता में स्वार्थ के लिए कोई जगह नहीं होती। मित्रता पूर्ण पारदर्शीय होनी चाहिए। सच्चा मित्र दुःख में साथ देता है। मित्रता कभी भी जल्दबाजी में नहीं करनी चाहिए बल्कि खूब सोच विचार करके करनी चाहिए ताकि स्थाई मित्रता बनी रहे। प्रायः समान विचार वाले, समान संस्कार वाले, समान स्थिति वाले तथा समान रुचि वालों से की गई मित्रता स्थाई रहती है। सच्ची मित्रता की कसौटी है, दुःख में साथ देना तथा विपरीत

परिस्थितियों में मित्र की सहायता करनी है। निःस्वार्थ मित्रता चिर स्थाई रहती है। उससे अपना मन, सन्तुष्ट, सुखी तथा प्रसन्न बना रहता है। जहाँ तक हो सके मित्रों की संख्या सीमित ही रखनी चाहिए ताकि मित्रता के सम्बन्ध का निर्वहन किया जा सके।

सन्तों का कहना है कि संयम की हर क्षेत्र में उपयोगिता है। संयम ही सुख का आधार है। आज जीवन के हर क्षेत्र में तरह–तरह की समस्यायें मुँह बाये खड़ी हैं। उनका समाधान करने में मानव अपने को बेबस तथा लाचार पाता है, जिसका मुख्य कारण है, आत्मसंयम का अभाव। यदि मनुष्य खाने, पीने, बात–चीत, व्यवहार, काम–धन्धा, संग्रह–खर्च आदि हर क्षेत्र में संयम को अपना ले, तो सभी समस्याओं का सहज निराकरण हो जाये तथा मनुष्य सुख पूर्वक जीवन यापन करने लगे। विद्वानों का मत है कि शाश्वत सुख की प्राप्ति तो आत्मसंयम से ही होती है। प्राणी–पदार्थों के संग्रह तथा विषय भोगों से सुख की आशा करना व्यर्थ है। पदार्थों का संग्रह तथा विषयों का भोग देखने में तो अमृत के समान सुखदायी मालूम होते हैं, लेकिन परिणाम में वह विष के समान दुःखदायी होते हैं। विषयी भोग मानव को मृत्यु की ओर ले जाते हैं। संयम को सुखी जीवन का आधार बताया गया है–

संतो सन्तोष सुख है, रहहु तो हृदय जुड़ाय।
जब लग दिल पर दिल नहीं, तब लग सब सुख नाहिं।।
जो तू मुझको, छोड़ सकल की आस।
मुझ ही ऐसा होय रहो, सब सुख तेरे पास।।

अर्थात् स्थायी सुख तो आत्मसंयम से मिलता है। यह वसुधा तो अनादि काल से कुंवारी है, इसे आज तक कोई अपना नहीं सका। कहावत है "सन्तोषी सदा सुखी"। अर्थात् जहाँ सन्तोष रहता है वहाँ परमशान्ति वास करती है तथा मन भी शान्त हो जाता है। अतः मन को वश में करना ही श्रेयस्कर है।

संयम, सन्तोष और निष्कामता में ही परम सुख का वास है। जो मनुष्य आत्मशान्ति, परमशान्ति, परमानन्द, शाश्वत सुख चाहे, वह संयमी और निष्काम हो जाये। तब वह स्वयं ही आनन्द कन्द और सुखकन्द हो जायेगा। गीता (6/17) में भगवान योगेश्वर आनन्दकन्द श्री कृष्ण महाराज ने कहा है–

युक्ताहार विहारस्य युक्तचेष्टस्य कर्मसु।
युक्तस्वप्नावबोधस्य योगो भवति दुःखहा।।

अर्थात् जो योगपूर्वक यानी संयम से इस संसार में जीता है, वह दुःख को नष्ट कर देता है। जैन शास्त्र में भी कुछ इसी प्रकार की बात कही गई है–

जयं चरे जयं चिट्ठे, जयं मासे जयं सये।
जयं मुन्जतो भासंतो पापकम्मं व बन्धई।।

अर्थात् जो यत्नपूर्वक (संयम) विवेक और अत्यन्त सावधानी के साथ चलना, बैठना, सोना, आहार लेना, भाषण करना जानता है, वह पापकर्मों में नहीं बंधता।

11. मन पर संयम रखना– मन शरीर का राजा कहा गया है। शरीर की दसों इन्द्रियों पर मन ही तो शासन करता है, अतः मन को ग्यारहवीं इन्द्रिय भी कहा गया है। मन पल–पल संकल्प–विकल्प बनाता रहता है। मन चंचल है, इसकी अबाध गति है जितनी गति और किसी की नहीं है। मन असंयमित होता है। इसकी गति हवा से कई सौ गुनी होती है। इसीलिए कहा गया है–

मन चंचल मन बावरा, मन चंचल चितचोर।
एक जगह ठहरे नही, भागे और ही ओर।।

अतः गीता में कहा गया है कि मन को ज्ञान रूपी अंकुश से अर्थात् योग परायण होकर वश में किया जा सकता है। इसके लिए बार–बार अभ्यास और स्वाध्याय की आवश्यकता है।

12. सदैव सकारात्मक सोचें– कहते हैं स्वस्थ शरीर में सुन्दर स्वस्थ आत्मा रहती है। सुन्दर स्वास्थ्य के लिए विचारों का बड़ा महत्त्व होता है। सदैव सकारात्मक सोचने से भविष्य सुन्दर बनता है तथा जीवन में सफलता हाथ लगती रहती है। परन्तु नकारात्मक सोच से आदमी निराश तथा चिन्तित रहा करता है, उसे अक्सर असफलता ही मिलती है। अतः मनुष्य को नकारात्मक विचार जैसे–ईर्ष्या, द्वेष, घृणा, क्रोध, लोभ, निन्दा इत्यादि की जगह सकारात्मक विचार जैसे प्रेम, प्रसन्नता, सेवा एवं क्षमा आदि के विचार रखने चाहिए। अतः हमें दुःख–सुख, लाभ–हानि, यश–अपयश, जय–पराजय तथा निन्दा–स्तुति में समान भावना रखनी चाहिए। ऐसा करने से मन संतुलित रहेगा तथा हमारे स्वास्थ्य पर भी कोई प्रतिक्रिया नही होगी। स्वास्थ्य का शत्रु क्रोध होता है तथा क्रोध का मूल काम या कामना है। कामनाओं का हमारे मन से और जब मन के अनुसार बात नही बनती है तब क्रोध आ जाता है। इसलिए हमें मन की आवाज नही सुननी चाहिए। केवल बुद्धि विवेक का सहारा लेना ही उत्तम होता है।

13. उचित आराम की आवश्यकता है– खुशहाल रहने के लिए आराम की भी आवश्यकता है। दिनभर की दौड़धूप के पश्चात औसतन व्यक्ति को 6 से 8 घंटे तक नींद लेनी चाहिए अगर संभव हो तो भोजन के बाद पांच मिनट तक वज्रासन में बैठना चाहिए। ऐसा करने से पाचन प्रणाली ठीक रहती है। जो लोग देर तक बैठे–बैठे कार्य करते हैं, वे ताड़ासन या शवासन पांच से दस मिनट तक करें तो स्वास्थ्य के लिए ठीक होगा। थकावट मिट जाती है।

14. जल का सेवन अधिक करें– जल ही जीवन है। जल हमारे जन्म से लेकर मृत्यु तक का साथी है। पग पर जल की आवश्यकता होती है। प्रतिदिन कम से कम आठ से दस गिलास पानी अवश्य सेवन करें। जल शरीर की रसायनिक तथा भौतिक क्रियाओं को सन्तुलित

रखता है। भोजन के साथ पानी नहीं पीना चाहिए तथा लगभग एक घंटे बाद ही पानी पीये तथा हर घंटे बाद पीते रहे। जो चाय अथवा कॉफी पीने के आदी है, उन्हें चाय–कॉफी पीने से पूर्व पानी अवश्य पीना चाहिए। ऐसा करने से उनके दुष्प्रभावों से बचा जा सकता है। एक चाय या कॉफी से दूसरी चाय या कॉफी का अन्तराल कम से कम तीन घंटो का होना चाहिए। तम्बाकू, गुटका का सेवन कदापि न करें सिगरेट–बीड़ी का पीना तो स्वास्थ्य को हानिकारक है अतः इनका सेवन न करें।

15. इन्द्रिय संयम करें–

देयानि स्ववशे पुंसा स्वेन्द्रियाण्याखिलानि वै।
असंयतानि खादन्तीन्द्रियाण्येतानि स्वामिनम्।।

अर्थात् अपनी इन्द्रियों को वश मे रखना चाहिए। असंयत इन्द्रियाँ स्वामी का नाश कर देती है। शरीरस्थ इन्द्रिया आत्मा के औजार है सेवक है। परमात्मा ने इन्हें इसलिए प्रदान किया है कि इनकी सहायता से आत्मा की सभी आवश्यकतायें पूर्ण होती रहे और परम सुख मिले। सब इन्द्रिया उपयोगी है। इन्द्रियों का सदुपयोग करके जीवन को मधुर तथा सुखी बनाया जा सकता है। इनका दुरुपयोग ही पाप कहलाता है। जैसे खाना खाने से भूख मिट जाया करती है, उसी प्रकार शरीर की विभिन्न क्षुधाओं को तृप्त करने का माध्यम इन्द्रियाँ होती है। अगर ये इन्द्रियाँ सन्तुष्ट न रहे तो शरीर के अन्तःकरण का सन्तुलन बिगड़ जाता है जिससे कई तरह की परेशानियाँ शरीर मे पैदा हो जाती है। ज्यादा इन्द्रिय भोग किसी भी हालत मे ठीक नहीं होता। इनके भोगो मे मनुष्य सुख का अनुभव करता है परन्तु उसका कर्मफल सदैव दुःखदायी होता है जिसका परिणाम शरीर पर पड़ता है तथा नाना प्रकार के दोष तथा बीमारियाँ पैदा हो जाती हैं। अतः शरीरस्थ इन्द्रियों पर संयम रखना आवश्यक है। अति सर्वत्र वर्जते'' अर्थात् अति सब जगह त्यागने के योग्य है।

अतः मेरा मानना है कि मनुष्य उपरोक्त सूत्रों का आचरण करे तो अपने जीवन को खुशहाल बना सकता है तथा एक मधुर तथा सुन्दर जीवन जी सकता है।

●●●

स्वार्थमय उपायों एवं अभिप्रायों को पूर्णतः त्याग दो। वे आपको परिच्छिन्न रखते हैं। समस्त वासनाएँ राग हैं। व्यक्तिगत अथवा शरीरगत प्रेम आसक्ति है। उसे भूल जाओ और पवित्र हो जाओ। इससे आपका शरीर स्वस्थ तथा बुद्धि पूर्ण स्वरूप हो जायेगी। अपनी आत्मा में डूब जाना सबसे बड़ा परोपकार है।

अष्टांग योग

डॉ. ऋषिराम शर्मा, लखनऊ

सांसारिक इच्छायें

इस संसार के विषय में दो मूलभूत रहस्य है। प्रथम तो यह कि यह संसार जीवात्माओं की इच्छाओं का मूर्तिमान स्वरूप है। द्वितीय यह कि यह संसार अविद्याजनित मिथ्या स्वप्न है। पहले हम संसार–स्वप्न की बात करते है। शास्त्रों का प्रमाण है कि–

संसारः स्वप्नतुल्यो हि रागद्वेषादिसंकुलः।
स्वकाले सत्यवत् भाति प्रबोधे असत्यत् भवेत्।।

अर्थात् जिस प्रकार निद्रावरण के कारण स्वप्नावस्था में जाग्रत संसार मिथ्या हो जाता है तथा स्वप्न का संसार सत्य हो जाता है तभी तो स्वप्न में यदि कोई हमारी हत्या करने हमारे पीछे दौड़ता है या जंगल में घूमते हुए शेरादि जानवर हम पर हमला करता है तब हम भय से कांपने लगते हैं और अपनी रक्षा के लिए दौड़ते हैं। उस समय हम यह नहीं सोच पाते हैं कि हम तो अपने बिस्तर पर अपने कमरे में सुरक्षित हैं। कारण यही है कि उस अवस्था में जागृत संसार मिथ्या था तथा स्वप्न का संसार सत्य था। किंतु स्वप्न से जाग जाने के बाद उल्टा हो जाता है यानि स्वप्न का संसार मिथ्या तथा जाग्रत का संसार सत्य। ठीक इसी प्रकार राग–द्वेषादि से युक्त अविद्या के आवरण में हमारा जागृतावस्था का संसार सत्य है तथा आत्मा का सर्वव्यापक, सर्वाधार तथा सर्वभूतान्तरात्मा का तत्वज्ञान मिथ्या है। जैसे ही अविद्या का आवरण समाप्त हो जाता है, तब तत्वज्ञान सत्य हो जाता है तथा जागृत संसार असत्य हो जाता है। इसी कारण महर्षि पतंजलि ने संसार का मिथ्यात्व बताते हुए लिखा है कि–

तदाभावे संयोगाभावः हानं तद् कैवल्यं आविवेकख्यातेः
कृतार्थं प्रति नष्टमपि अनष्टं तदन्यसाधारणत्वात्।।

अर्थात् जीवात्मा के दुःखों का कारण तथा संसार के अस्तित्व का कारण केवल अविद्याजनित दृष्टा तथा दृश्य की एकात्मता का संयोग है। इसीलिए ''दृष्ट्दृश्ययोः संयोगः हेयहेतु'' अर्थात् दुःखो का कारण केवल दृष्टा तथा दृश्य का संयोग है। परमात्मा ने ऐसा संयोग क्यों किया, इसके उत्तर में महर्षि पतंजलि लिखते हैं कि–

स्वस्वामीशक्त्योः स्वरूपोपलब्धिहेतुः संयोग।।

अर्थात् प्रकृति तथा पुरुष की शक्तियाँ उनके स्वरूप को जानने के लिए ही यह संयोग हुआ है। इस संयोग का हेतु अविद्या है। अतः अविद्या के अभाव में संयोग का भी स्वतः

अभाव हो जाता है। संयोग का अभाव होने से दृष्टा अपने शुद्ध स्वरूप में आ जाता है जिसे कैवल्यावस्था कहते हैं। यह कैवल्यावस्था विवेकख्याति की सिद्धि यानि तत्वज्ञान हो जाने पर आती है। तत्वज्ञान के बाद ज्ञानी को संसार के मिथ्यात्व का बोध हो जाता है। अतः यह संसार तत्वज्ञानी के लिए स्वप्नसंसार की भांति नष्ट हो जाता है किंतु अन्य अज्ञानियों की दृष्टि में इसका अस्तित्व बना रहता है। भगवान श्रीकृष्ण ने भी इसी सत्य की पुष्टि की है कि–

यावत् संजायते किंचित् सत्वं स्थावरजंगमम्।
क्षेत्रक्षेत्रज्ञसंयोगात् तद् विद्धि भरतर्षभ।।

अर्थात् जड़–चेतन का समस्त संसार जो भी देखने में या सुनने में आता है वह सब क्षेत्र यानि दृश्य तथा क्षेत्रज्ञ यानि दृष्टा के संयोग से प्रकट हुआ है। इसके प्रकट होने का कारण है–

''लोकवन्तु लीलाकैवल्यम् तद्श्रुतेः''
''आत्मा वा इदमेकः एवाग्रे आसीत् नान्यत् किंचिनम्
इमत्सः ईक्षत लोकान्नुसृजाः'' (ऐ.1/1)
''मायां तु प्रकृतिं विद्यात् मायिनं तु महेश्वरम्।।'' (श्वेता. 4/10)
''अनेन जीवेन आत्मना अनुप्रविश्य नामरूपे व्याकरणाणि''

(छान्दो. 6/3/2)

अर्थात् यह संसार परमात्मा की लीलामात्र है। इसलिए इस सम्पूर्ण प्रकृति को परमात्मा की माया समझो तथा परमात्मा को मायाधीश। संसार के प्रकट होने से पूर्व केवल एक आत्मतत्व था और कुछ भी नहीं था। उस आत्मतत्व में इच्छा का प्रादुर्भाव हुआ और इच्छा मात्र से समस्त लोकों का निर्माण हो गया है। इस नाम तथा रूप की सृष्टि में आत्मतत्व ने जीवात्मा के रूप में स्वयं प्रवेश करके अपने को ही नामरूप में प्रकाशित किया। श्रुति के इन वाक्यों से यह स्पष्ट है कि इच्छा ही संसार का आधार है। प्रकृति भी परमात्मा का संकल्पमात्र है, संसार का संचालन भी संकल्प से होता है। श्रुति में तथा गीता में इसके प्रमाण हैं कि–

अथ खलु क्रतुमयः पुरुषः यथाक्रतुरस्ति लोके पुरुषो भवति
तथेतः प्रेत्य भवति स क्रतुं कुर्वति, मनोमयः प्राणशरीरो भारूपः

(छान्दो. 3/14/2)

यादृशी वासनामूले वर्तते जीवसंगिनी।
तादृशं वहते जन्तुः कृत्याकृत्यविमोभ्रमम्।।
मयाध्यक्षेण प्रकृतिः सूयतेसचराचरम्।
हेतुनानेन कौन्तेय जगत विपरिवर्तते।।

प्रकृतिं स्वां अमिष्टभ्य विसृजामि पुनः पुनः।
भूतग्रामं इमं कृत्स्नं अवशं प्रकृतेर्वशात्।।
मनः एव मनुष्याणां कारणं बन्धमोक्षयोः।
बन्धाय विषयासक्तं मोक्षाय निर्विषयं मनः।।

अर्थात् जीवात्मा का स्वरूप संकल्पवान है, जैसा संकल्प होता है मनुष्यलोक में उसका व्यवहार ठीक वैसा ही होता है। शरीर त्यागने के बाद भी मृत्युकाल के संकल्प के अनुसार ही उसकी परलोकगति होती है। अन्य लोकों में उसका मनोमय प्राणरूपी शरीर तेजअंश के रूप में विचरण करता है। वहाँ भी उसके अन्तःकरण में वासना के संस्कार तथा पाप–पुण्यों के कर्मसंस्कार दिशानिर्देशन करते हैं। इसीलिए भगवान श्रीकृष्ण कहते हैं कि मेरे आधीन मेरी प्रकृति ही उपरोक्त संस्कारों के आधार पर संसार के आवागमन को निर्धारित तथा नियन्त्रित करती है। मैं परमात्मा स्वयं प्रकृति के प्रत्येक अवयव में प्रवेश करते हुए जीवात्माओं के संकल्पों के अनुसार ही संसार की रचना, संसार की व्यवस्था तथा संसार की प्रलय का संचालन करता हूँ। वास्तव में जीवात्माओं का मन ही उनके बन्धन तथा मोक्ष का कारण बनता है। विषय–भोगों में आसक्त मन माया के जाल में बांधता है तथा निर्विषय मन माया के बन्धनों से मुक्ति दिलाता है। अतः संक्षेप में सारतत्व यही है कि सांसारिक इच्छायें ही जीवात्मा के संसार का निर्माण करती हैं तथा सर्वकामनाओं की निवृत्ति उसके संसार का नाश करती है।

तात्त्विकरूप से तो परमात्मा ही संसार का निमित्त कारण तथा उपादान कारण दोनों है। भगवान वेदव्यास जी ने ब्रह्मसूत्र में इसकी पुष्टि की है कि–

परात्तु तद् श्रुतेः (ब्रह्मसूत्र 2/3/41)

कृतप्रयत्नापेक्षस्तु विहितप्रतिषिद्धावैयर्थ्यादिभ्यः (ब्रह्मसूत्र 2/3/42)

अर्थात् श्रुति के कथनानुसार परमात्मा ही सब कर्मों का कर्ता है। किंतु वह स्वयं उदासीन तथा असक्त है, केवल शास्त्रों के विहित तथा निषिद्ध कर्मों की सार्थकता के लिए जीवात्मा के द्वारा किये गये प्रयत्न की अपेक्षा रखता है। श्रुति के अनुसार यह संसार स्वप्नदर्शन जैसा ही है, क्योंकि–

स्वयं विहत्य स्वयं निर्माय स्वेन भासा स्वेन ज्योतिषा प्रस्वपिति (बृह. 4/3/9)

इन्द्रियाणामुपरमे मनोनुपरतं यदि सेवते
विषयान् एव तद्विद्यात् स्वप्नदर्शनम्।।

अर्थात् जिस तरह जीवात्मा स्वयं ही जागृत संसार को त्यागकर स्वयं नवीन स्वप्न–संसार की रचना अपने ही तेज से अपने ही प्रकाश में करता है तथा स्वप्न देखता है, उसी प्रकार यह संसार भी उसका स्वप्नदर्शन जैसा है। स्वप्नदर्शन में बहिर्मुखी इन्द्रियाँ शान्त

रहती है तथा मन सूक्ष्म इन्द्रियों के माध्यम से विषयों का सेवन करता है तथा संसार में मन बहिर्मुखी इन्द्रियों के माध्यम से विषयों का सेवन करता है। यही विषय-सेवन जीवात्मा के बन्धन का कारण है, क्योंकि वह वृत्तिसारूप्य का अनुभव करता है। भगवान श्रीकृष्ण ने भी इसी भ्रान्ति का लक्षण दिया है कि-

पुरुष: प्रकृतिस्थो हि भुक्ते प्रकृतिजान् गुणान्।
कारणं गुणसंगोऽस्य सदसत्योनिजन्मसु।।
श्रोत्रं चक्षु : स्पर्शनं च रसनं घ्राणमेव च।
अधिष्ठाय मनश्चायं विषयाननुपसेवते।।

अर्थात् जीवात्मा के संसार तथा उसके जन्म-मृत्यु के बन्धन का कारण यही है कि वह प्रकृतिस्थ होकर स्वयं भोक्ता बन गया, जबकि श्रोत्र, चक्षु, त्वचा, रसना तथा घ्राणेन्द्रिय के द्वारा मन विषय-भोग की अनुभूति करता है, प्रिय अथवा अप्रिय का निर्णय करता है और यह पूर्णरूपेण मायिक गुणों की प्रक्रिया है। जीवात्मा तो भ्रान्ति का शिकार है ठीक उसी तरह जिस तरह एक कुत्ता हड्डी से घायल जबड़े का अपना ही रक्त चूसने के सुख को हड्डी खाने का सुख मानता है।

क्रमशः

पुनर्वित्तं पुनर्मित्रं पुनर्भार्या पुनर्मही।
एतत्सर्वं पुनर्लभ्यं न शरीरं पुनःपुनः।।

-चाणक्यनीति दर्पण

धन, मित्र, पत्नी और यह जगत (सम्पदा, देश, राज्य आदि) तो बार-बार मिल सकते हैं पर मनुष्य शरीर बार-बार नहीं मिलता। बल्कि अनेक योनियों में भटकने के बाद मनुष्य योनि मिलती है। अतः इस दुर्लभ मनुष्य शरीर का सदुपयोग कर शुभ कर्म और धर्म के अनुसार आचरण करना चाहिए।

भजन प्रभु रामलाल महिमा

मोती राम गर्ग, अलुपुर

प्रभूजी प्रभूजी, तुम जग के पालन हार।
दया निधि भक्तवत्सल, सबके प्राण आधार।
1. मैं पाया शरण तुम्हारी रखना लाज हमारी।
तेरे चरणों का पुजारी, तू दाता मैं भिखारी।।
करूँ उपमा किस से तुम्हारी, स्वयं जग के आधार
प्रभू जी प्रभूजी..........
2. जो ध्यान तुम्हारा करता भव सागर तर जाता।
मन में नहीं घबराता, सदा दर्शन तेरा पाता।।
कैसे करूँ शुक्रिया तेरा तेरी लीला अपरम्पार।।
प्रभूजी प्रभूजी..........
3. बहुतों को पार उतारा, मेरा भी ख्याल करना।
मैं पड़ा, अधर में स्वामि, आ कर हाथ पकड़ना।।
नरसी के तुम ठाकुर बन के, करते स्वर्ण बौछार।।
प्रभूजी प्रभूजी..........
4. मोती राम तेरा गुण गावे, करता योग प्रचार।
सूक्ष्म ब्रह्म से नाता जोड़ो, विषयों को दो मार।।
कर्म बन्धन से योग छुड़ावे, भव से तारे पार।
प्रभू जी प्रभू जी तुम जग के पालन हार।।
दया निधि भक्त वत्सल सब के प्राण आधार।।

ooo

संस्कार भुगतान-विशिष्ट विधि से

केशवदेव उपाध्याय

वाराणसी मण्डल के हमारे आदरणीय गुरुभाई बाबू विन्ध्यवासिनी प्रसाद सिंह जी दिवानी एवं कमीश्नरी के ख्याति प्राप्त एडवोकेट थे। वे आवश्यकतानुसार हाईकोर्ट एवं सुप्रीम कोर्ट में भी बहस के लिए जाते थे एवं वहाँ अकाट्य तर्कों के साथ अपना पक्ष प्रस्तुत करते थे। वकालत के पेशे के गूढ़ रहस्यों को समझने के लिए हाईकोर्ट एवं सुप्रीम कोर्ट के वकील उनसे परामर्श करने उनके पास आते रहे। विभिन्न हाईकोर्ट एवं सुप्रीम कोर्ट के कई एडवोकेट उनके जूनियर्स रह चुके हैं। पूर्वान्चल के गाजीपुर जनपद की सदर तहसील में हथियाँ मठ बहुत बड़ा आश्रम है। इसके पचास एकड़ भूमि का मुकदमा हाईकोर्ट में चल रहा था। हाईकोर्ट में मठ मुकदमा हार गया। उसने सुप्रीम कोर्ट में आदरणीय भाई साहब के द्वारा तैयार कागजात पर मुकदमा दाखिल किया एवं मुख्य एडवोकेट बाबू विन्ध्यवासिनी प्रसाद सिंह को ही रखा। कई करोड़ की सम्पत्ति का मामला था। श्री भाई जी की कुशाग्र बुद्धि ने अपना चमत्कार दिखाया एवं इस बार विजय हथियाँ मठ की हुई। इस केस में विपक्ष को काफी हरजाना भी देना पड़ा। यह भाई जी के जीवन की अहम घटनाओं में से एक है। इस मठ की पूरे भारत के कई प्रान्तों में कई बड़ी-बड़ी शाखायें तथा आश्रम हैं।

पूर्व प्रधानमंत्री श्रीमती इन्दिरा गांधी द्वारा इमरजेन्सी लगने के बाद समाजवादी विचारधारा के मुख्य राष्ट्रीय नेता श्री राजनारायण जी को तिहाड़ जेल में बन्द कर दिया गया। उनके खान-पान का भी उचित प्रबन्ध नहीं था और प्रशासन की तरफ से उन्हें मानसिक कष्ट देने वाले कार्य किये जाते थे। भाई विन्ध्यवासिनी जी एक तो समाजवादी विचारधारा के थे एवं दूसरे श्री राजनारायण जी के रिश्तेदार भी थे। जब भाई जी उनसे मिले तो उन्होंने कहा था "प्रशासन के लोग हमें स्लो प्वाइजनिंग द्वारा मार डालना चाहते हैं और ये इन्दिरा कभी इमरजेन्सी समाप्त नहीं करेगी। मैं तो यही सोच कर निराश एवं उदास हूँ।" आदरणीय भाई जी उन्हें सान्त्वना देते हुए कहा था कि नेता जी घबराइये नहीं मैं अपने श्री गुरुदेव भगवान से आप का कष्ट अवश्य अवश्य निवेदित करूंगा। वे दया सागर है दीन दुखियों पर दया करना उनके स्वभाव में है। आदरणीय भाई जी ने श्री चरणों में नेता जी की परेशानी निवेदित किया था। आराध्यदेव जी ने अपने कर कमलों से एक पत्र लिखा उसमें गुलाब की कुछ पत्तियाँ शक्ति पातित कर पत्र के साथ लिफाफे में बन्द किया एवं भाई जी को देते हुए कहा "लल्ला! इस पत्र पर पता लिख कर इसे पोस्ट बॉक्स में डलवा दो।" पत्र पर पता लिखने के बाद भाई जी ने विनीत शब्दों में श्री गुरुदेव जी से निवेदन किया "गुरुदेव

तिहाड़ जेल का प्रत्येक पत्र सेन्सर होता है एवं हमें ऐसा लगता है कि यह पत्र श्री राजनरायण जी के पास नहीं पहुँच सकेगा। समुन्द पीकर सूखे ओष्ठ दिखने के श्रेष्ठतम उदाहरण हमारे आराध्य श्री गुरुदेव भगवान ने अपने मुखारविन्द से रहस्यमयी मुस्कान के साथ कहा ''यह पत्र तुम आज ही पोस्ट बॉक्स में डलवा दो। यह राजनरायण को अवश्य ही मिलेगा।'' पत्र में श्री गुरुदेव भगवान ने लिखा था ''चि. राजनरायण! आशीर्वाद सन्तु। अत्र कुशलं च तत्रास्तु। विन्ध्यवासिनी वकील द्वारा तुम्हारा कष्ट सुनकर हमें बड़ा दुःख हुआ। वैसे हमें जो जानकारी मिली है उसके अनुसार तुम्हारा आहार (खान–पान) ठीक नहीं है। पत्र पाते ही इसमें रखे पुष्प प्रसाद का सेवन कर लेना। उसके बाद अपना आहार बिल्कुल सात्विक रखना। कम से कम तीन घन्टे सुबह एवं तीन घन्टे सायंकाल पंचाक्षरी (ॐ नमः शिवाय) मंत्र का जप करना। साथ ही रात को चित लेट कर मंत्र जप करना। मंत्र जप करते हुए सो जाना। इन आज्ञाओं का कड़ाई से पालन करना। यदि तुम ऐसा करोगे तो पैंतालिस दिन के अन्दर इमरजेन्सी समाप्त हो जावेगी एवं तुम जेल से बाहर आ जाओगे। श्री राजनरायण जी ने श्री गुरुदेव की आज्ञाओं का अक्षरशः पालन किया एवं उन्तालिसवें दिन इमरजेन्सी समाप्त हो गई एवं वह जेल से रिहा हो गये। फिर क्या हुआ दुनिया ने देखा पूर्व प्रधान मंत्री श्री चरण सिंह जी को प्रधानमंत्री बनाने का श्रेय हमारे गुरुभाई श्री राजनरायण जी को ही है जिन्हें लोग नेता जी के नाम से जानते एवं पहचानते थे।

कालान्तर में श्री चरण सिंह जी से राजनारायण जी का किसी बात पर मतभेद हो गया एवं चौधरी चरण सिंह जी ने कह दिया कि यदि हिम्मत हो तो बागपत संसदीय क्षेत्र से चुनाव में आइये आप को अपनी औकात का पता लग जायेगा। नेता जी ने यह बात हमारे आदरणीय भाई श्री विन्ध्यवासिनी जी को बतलाई भाई जी ने कहा कि नेता जी अब तो चुनौती स्वीकारना ही उचित है। नेता जी बागपत से चुनाव लड़े। भाई जी तन–मन–धन से उनके प्रचार में करीब एक माह तक रहे। बागपत संसदीय क्षेत्र का छपरौली एक विधान सभा क्षेत्र है। इस विधान सभा के किरथल पोलिंग स्टेशन पर करीब सैकड़ों आदमियों ने हमला बोलकर बूथ कैपचरिंग करना चाहा। नेता जी के सभी समर्थक भाग गये मात्र भाई श्री विन्ध्यवासिनी जी एवं उनके जूनियर श्री बृज भूषण जी वहाँ डटे रहे। भाई जी पूरी वोटिंग के दौरान श्री तिवारी जी से पूछते रहे, डर तो नहीं रहे हो। साथ ही यह भी कहते कि श्री गुरुदेव महाराज हम लोगों की रक्षा कर रहे हैं ऐसा हमें आभास हो रहा है। सांय काल वोटिंग समाप्त होने के चन्द मिनट पहले एक बयासी–तिरासी साल का वृद्ध ने आकर भाई जी से हाथ जोड़कर कहा ''आप ही वकील विन्ध्यवासिनी सिंह जी हैं जिनकी अगुवाई में श्री राजनरायण जी चुनाव लड़ रहे हैं।'' इनकी स्वीकारोक्ति के बाद उसने कहा कि शेर की गुफा पर दहाड़ना आप जैसे वीरों का ही कार्य है।

सन् दो हजार तीन में उज्जैन कुम्भ लगने वाले स्थान पर हथियाँ आश्रम का

आध्यात्मिक आयोजन था। उसमें बहुत बड़ा साधना शिविर लगा था। इस आश्रम द्वारा भाई जी इसमें आने उसका लाभ लेने स्नान एवं ठहरने के लिए विशेष रूप से आमंत्रित थे। आश्रम के मुख्य महन्त ने कचहरी में स्वयं उपस्थित होकर निमंत्रित किया था तथा साथ ही व्यक्तिगत अनुरोध भी किया था। इस मठ के ट्रस्टियों द्वारा इनके आने-जाने ठहरने एवं स्नानादि की इतनी अच्छी व्यवस्था की गई थी कि उसका वर्णन लेखनी करने में असमर्थ है। आदरणीय भाई जी छाया की तरह साथ रहने वाले अपने परमप्रिय जूनियर हमारे गुरुभाई श्री बृज भूषण तिवारी जी को साथ लेकर गये थे। इसी पुण्य क्षेत्र मेले में भाई जी फिसलकर सिढ़ियों से गिर गये एवं इनके सिर में गंभीर चोट आ गई। ब्रेन हैमरेज तो नहीं हुआ, परन्तु चोट एवं घाव काफी अन्दर तक प्रभावी था।

वाराणसी में भाई जी को इस रोग में मास्टर डिग्री के साथ और अन्य विशिष्ट डिग्री प्राप्त तथा अनुभवशील डाक्टर श्री मधुकर राय जी को दिखलाया गया। डाक्टर साहब ने उन्हें देखा एवं चार-पाँच विशिष्ट जाँच कराने का परामर्श दिया। जब सभी जाँच रिपोर्टे आ गई तो उसे डाक्टर श्री राय से दिखाया गया। डाक्टर ने रिपोर्ट देखने के बाद कहा कि इनके सिर में ब्रेन ट्यूमर हो गया है जो कैन्सरस (केन्सर) का रूप धारण कर रहा है। डा. श्री राय ने कुछ दिनों तक अपनी परामर्श के अनुसार इलाज चलाया, परंतु कोई विशेष लाभ नहीं हुआ। कोई विशेष लाभ न होते देख डाक्टर श्री राय ने इन्हें एम्स (आल इन्डिया मेडिकल इन्सीटीट्यूट) में दिखलाने का परामर्श दिया। एम्स में इलाज के दौरान ये अधिकांश समय अपने आर के पुरम स्थिति आश्रम पर ही रहे। वहाँ के डाक्टरों की पैनल ने अपने यहाँ फिर जाँच कराई तो ब्रेन ट्यूमरस कैन्सर कनफर्म हो गया। अब ब्रेन के ऑपरेशन की बात थी। उस समय एशिया फेम का बेस्ट न्यूरो सर्जन विमहांक श्री डा. के मुखर्जी, नई दिल्ली में था। उसने भाई जी के ब्रेन का ऑपरेशन किया, जो सफल रहा उसके बाद भाई जी धीरे-धीरे स्वास्थ्य लाभ करने वाराणसी मकान पर आ गये। उसके करीब एक माह बाद चेक कराने फिर दिल्ली गये वहाँ डाक्टरों की पैनल ने कुछ दिन सिकाई का परामर्श दिया एवं कुछ दिन सिकाई कराने के बाद भाई जी वाराणसी अपने मकान पर आ गये।

तीन फरवरी सन् दो हजार चार का दिन था। आज उनके स्वास्थ्य का हाल जानने उनके समधी (उनके पुत्र वधू के पिता) आये थे। भाई जी नाश्ता कर चुके थे, कुछ सिहरन का अनुभव हो रहा था, अतः छत के ऊपर चारपाई डलवाकर धूप में लेटे हुए थे। आज भाई जी को कुछ विशेष कष्ट था, अतः श्री गुरु मंत्र जपना आरम्भ किये। मात्र आधा घंटा जप किये होंगे कि आँख बन्द हो गई एवं श्री गुरुदेव भगवान दिखाई देने लगे। भाई जी पूर्ण चेतना में थे। उन्होंने हाथ जोड़कर प्रार्थना किये, "गुरुदेव! हमने इस जन्म में होश सम्भालने के बाद कोई पाप कर्म नहीं किया है और न कभी असत्य का सहारा लिया है हमें इतना असह्य कष्ट क्यों हो रहा है।" श्री गुरुदेव भगवान ने अपने मुखारविन्द से कहा "लल्ला! तुम्हारी बात बिल्कुल

सत्य है। पूर्व जन्म में तुम हाईकोर्ट के जज थे। तुमने कत्ल करने वाले चार अपराधियों को अच्छी प्रकार यह जानते हुए कि इन सबों ने कत्ल किया है, तुमने रिश्वत लेकर बाईज्जत बरी किया यह उसी पाप का कष्ट है। अब इसके असहय कष्ट को तुम्हारा शरीर बरदाश्त नहीं कर सकता और यह कष्ट तुम्हें चार दिन और चार रात और भोगना है तब जाकर भुगतान पूरा होगा। चूंकि तुम प्रभुजी की शरण में हो अतः हमसे बात होने के मात्र पैंतालिस मिनट बाद तुम "कोमा" में हो जाओगे। अतः हमसे हुई बात अपनी धर्मपत्नि एवं परिवार को तुरन्त बता देना। जो खाने की इच्छा हो खा लेना। समय का अवश्य ध्यान रखना। अपने परिवारों वालों को बता देना की तुम्हारे इलाज पर पैसा बर्बाद न करें" इसके बाद दृष्यान्तर हो गया एवं भाई जी सामान्य भाव में उठ गये। भाई जी ने तत्काल ही अपनी धर्मपत्नी को बुलाया एवं उनसे कहा कि बहू को कह दो की छेमी (मटर की फली) की घुघरी तत्काल खूब बढ़िया बनावे एवं उसके बाद एक गिलास दूध की कॉफी तैयार करे। बहू को यह बतलाकर तुम तुरन्त वापस आ जाओ। इनकी धर्मपरायणा पत्नि बहू को समझा कर, तुरन्त ही उनके पास आ गई। भाई जी ने उन्हें सविस्तार श्री गुरुदेव भगवन से हुई दिव्य बातों को बतलाया एवं उन्हें खूब अच्छी प्रकार सान्त्वना दिया। खूब अच्छी प्रकार से समझा दिया कि केवल इसी लोक के ही नहीं, पर लोकों के भी एक मात्र स्वतंत्र ईश्वर हमारे श्री गुरुदेव भगवान ही हैं। अतः हमारे चले जाने के बाद, हमारी चिन्ता बिल्कुल मत करना मैं आराध्यदेव के संकल्प से जा रहा हूँ। उनकी आरती पूजा समय से हो इसका ख्याल रखना एवं ज्यादे से ज्यादा मंत्र जप करना। बीच-बीच में भाई जी अपनी बायें हाथ में बंधी घड़ी भी देखते रहे। तदन्तर नीचे आ गये। घुघरी ग्रहण करते हुए कॉफी पिये एवं अपने पारिवारिक जनों से सहजावस्था में वार्तालाप करते रहे एवं जब चालीस मिनट का समय व्यतीत हो गया तो बोले अब हमारा समय करीब है एवं इसके बाद श्वास-प्रश्वास से जप करने लगे। वही हुआ जो आराध्यदेव जी का संकल्प था। मात्र चन्द मिनटों में भाई जी कोमा में आ गये। कोमा में आने से पूर्व ही वह चित लेट गये थे। भाई जी की धर्म परायणा पत्नी जी ने अपने पतिदेव के साथ हुई बात किसी से बतलाना उस समय इसलिए उचित नहीं समझा कि परिवार के सभी सदस्य तत्काल दुःखी हो जायेंगे। इसके बाद इनके सुपुत्रगणों ने अपने हितैषियों की परामर्श के अनुसार एक सम्पूर्ण सुविधा युक्त नर्सिंग होम में भर्ती किया जो इनकी मकान के करीब ही है। वह अनुभवी डाक्टरों द्वारा इलाज आरम्भ हुआ, परंतु रंचमात्र भी लाभ नहीं हुआ। वाराणसी मण्डल के हमारे सभी गुरुभाई बहन जिनको भाई जी की बिमारी का पता लगा नर्सिंग होम जा-जाकर इनकी बीमारी का हाल-चाल लिया।

वाराणसी मण्डल के गुरुभाई-बहन महिने के पहले रविवार को सामूहिक आरती पूजन करते हैं। उस दिन संयोग से महिने का पहला रविवार था। सामूहिक सतसंग लगभग तीन घन्टे का कार्यक्रम उपरान्त एक बजे से चार बजे तक था। सत्संग की लगभग पूरी

तैयारी हो चुकी थी एवं सत्संग वाले स्थान पर लगभग पैंतालिस गुरुभाई बहन उपस्थित हो गये थे एवं दिन के बारह बजकर पचास मिनट हो रहे थे। हमारे गुरुभाई बाबू आत्मा प्रसाद जी ने अपना कार्यक्रम इस प्रकार बनाया था कि वे भाई जी को नर्सिंग होम से देखकर सत्संग में आते। वे नर्सिंग होम से सामूहिक सत्संग के लिए प्रस्थान कर चुके थे। रास्ते में उन्हें सूचना मिली कि भाई जी का शरीरान्त हो गया। बाबू आत्मा प्रसाद जी ने इसकी सूचना तत्काल सामूहिक सत्संग वाले संयोजक को दी। उस दिन का सत्संग स्थगित कर वाराणसी मण्डल के सभी गुरुभाई उनके घर गये। वहाँ से उनकी शव यात्रा "गुरुदेव जय जय सद्गुरु जय जय, अखण्ड ज्योति प्रभु रामलाल जय-जय" के कीर्तन के साथ आरम्भ हुई जो मोक्ष दायनी काशी नगरी के मर्णकटिका घाट पर समाप्त हुई। चूंकि रविवार का दिन था, अतः लोकल वकील समुदाय अपने घर (गाँव) चला गया था, परंतु वाराणसी शहर में उपस्थित जिस किसी वकील को उनके देहावसान का समाचार मिला वह शमसान घाट मर्णकटिका अवश्य पहुँचा ही। गुरुभाईयों एवं उनके पारिवारिक जनों को छोड़कर करीब ढाई सौ लोग दाह संस्कार के समय घाट पर उपस्थित थे। "श्री गुरुदेव भगवान की जय महाप्रभु श्री रामलाल जी महाराज की जय" के गगनभेदी जयकारों के साथ उनके सु[illegible]त्र ने उन्हें मुखाग्नि दी एवं करीब ढाई घंटे तक लोग उनके विशेष व्यक्तित्व की चर्चा करते रहे। उसके बाद गुरुभाईयों गंगास्नान कर अपने आराध्यदेव से उनकी सद्गति की सामूहिक प्रार्थना की। इनके ब्रह्मभोज का कार्य इनके पुस्तैनी मकान मधुपुर में किया गया, जिसमें वाराणसी मण्डल के लगभग सभी गुरुभाई बहन उपस्थित थे। ऐसे थे हमारे गुरुभाई बाबू विन्ध्यवासिनी प्रसाद जी।

इनके देह त्याग के बाद का एक इनकी प्रसंग जो परम प्रिय जूनियर वकील श्री बृज भूषण तिवारी जी के साथ घटित हुआ इनकी परलोक की स्थित स्पष्ट करने के लिए पर्याप्त है। सुधी पाठकों को यह तथ्य अब ज्ञात ही हो गया होगा कि श्री तिवारी जी भाई जी के अपने बच्चों से भी ज्यादे प्यारे थे एवं बखूबी उन्होंने इस प्यार का निर्वाह किया। श्री बृज भूषण तिवारी जी ने उनकी बीमारी के समय उनको मल-मूत्र कराने उसे फेंकने और उनकी शारीरिक सेवा करने में अपने को गौरवान्वित महसूस किया। दीवाली पर्व के समय तिवारी जी ने अपने गाँव वाले मकान के पूजागृह में आरती आसन के बाद ध्यानाभ्यास आरम्भ किया। श्री बृजभूषण जी श्री गुरुदेव भगवन के लाड़ले बच्चे हैं एवं नियमित दो घंटे से ज्यादे ध्यानाभ्यास करना उनका स्वभाव बन गया है। ध्यानाभास की समाप्ति की बेला में इन्हें श्री भाई जी की बार-बार याद आ रही थी। एक अप्रत्याशित दृश्य उपस्थित हो गया। बाबू विन्ध्यवासिनी प्रसाद जी केवल मात्र लंगोटी एवं जनेऊ धारण किये हुए कमरे में प्रकट हो गये। श्री तिवारी जी ने उन्हें हाथ जोड़कर प्रणाम निवेदित किया। उस समय भाई जी की लम्बाई उतनी ही थी जितना उनका स्थूल शरीर था। उनके प्रणाम निवेदित करने के बाद

भाई जी ने कहा ''बृज भूषण क्यों आज बार-बार हमें याद कर रहे हो।'' श्री तिवारी जी ने कहा ''आप हमको मझधार में छोड़कर चले गये। मैं आप से कुछ सीख नहीं सका।'' भाई जी ने उत्तर दिया ''तिवारी! सभी लोकों के कर्ता धर्ता श्री गुरुदेव भगवान ही है। उनके संकल्प से ही अखिल ब्रह्माण्ड का पूरा कार्य होता है। उनके प्रत्येक संकल्प में शिष्य का कल्याण निहित है। मैं उनके संकल्प से ही यहाँ आया हूँ।'' श्री तिवारी जी ने फिर निवेदन किया ''आप ने यह भेष क्यों धारण कर लिया। धोती कुर्ता पहनने के बाद जब आप वाराणसी पान खाकर सड़कों पर चलते थे तो और राहगीर फीके पड़ जाते थे। आप की अलग ही पहचान होती थी।'' उनकी इन बातों को सुनकर भाई जी ने कहा ''तिवारी वह नकली दुनिया थी यह भेष श्री गुरुदेव भगवान का दिया है। उसके बाद मुस्कराते हुए कहने लगे काफी विलम्ब हो गया जा रहा हूँ।'' उनके अन्तिम शब्दों के बाद उनका शरीर छोटा होना आरम्भ हो गया एवं मात्र कुछ क्षणों में मात्र चार-पाँच इंच का हो गया एवं फिर अदृश्य हो गया। यह बात श्री बृजभूषण तिवारी जी ने हमें स्वयं बतलाई है। श्री तिवारी जी को साधुवाद के बाद अब श्री प्रभुजी के लिए यही कहना है।

प्रभुजी तुम्हारी महिमा संसार गा रहा है।
शिवजी का धाम पावन कैलाश गा रहा है।।

●●●

चरित्र-शिक्षण

एक संत एक नगर में कपड़े सीकर अपना निर्वाह करते थे। वहीं एक व्यक्ति उनसे बहुत कपड़े सिलवाता, किंतु सिलाई के रूप में वह उन्हें सदा खोटे सिक्के ही देता था। संत चुपचाप वे सिक्के ले लेते थे। एक बार संत कहीं बाहर गये हुए थे। इनकी दुकान पर उनका सेवक था। वह व्यक्ति सिलाई देने आया। सेवक ने सिक्के देखे और लौटा दिये– 'ये खोटे हैं, महोदय! दूसरे दीजिए।'

संत लौटे तो सेवक ने कहा–'अमुक व्यक्ति खोटे सिक्के देकर मुझे ठगने आया था।' संत बोले– 'तुमने सिक्के ले क्यों नहीं लिये। वह तो सदा मुझे खोटे सिक्के ही देता है और उन्हें लेकर मैं भूमि में गाड़ देता हूँ। मैं न लूँ तो कोई दूसरा व्यक्ति ठगा जायेगा।'

श्रीअरविन्द का पूर्णयोग

श्री अनिलवरण राय

अरविन्द क्या है और क्या करते है यह जानना मन–बुद्धि से जितना सम्भव है उतने के लिए तो अब तक प्रकाशित उनकी पुस्तकों मे यथेष्ट सामग्री है। फिर भी बहुत से लोग श्रीअरविन्द की शिक्षा और अश्रम के सम्बन्ध में नाना प्रकार की भ्रान्त और विकृत धारणा बनाये हुए हैं, इसी कारण उन्होंने स्वयं इस विषय में एक वक्तव्य दिया जो हिन्दी और बंगला अनुवाद के साथ पुस्तकाकार प्रकाशित हुआ है। श्री अरविन्द के योग को समझने में लोग जो इतनी भूल करते हैं, उसका एक प्रधान कारण यह है कि भारत की प्राचीन अध्यात्मशिक्षा के ऊपर इस योग की प्रतिष्ठा होने पर भी यह एक नयी चीज है, योग साधना–अध्यात्मसाधना से आजकल लोग साधारणतः जो कुछ समझते हैं, श्रीअरविन्द की साधना ठीक वही नहीं है।

सत्य एक है और सनातन है, इस विषय में कोई सन्देह नहीं। परंतु उस एक के अनेक रूप हैं, बहुत–सी दिशाएँ है। वे सब रूप और दिक् एक ही युग में, एक ही व्यक्ति के द्वारा सम्यक् रूप में प्रचारित हों, एक ही धर्मग्रन्थ में सम्पूर्ण रूप में वर्णित हों, यह सम्भव नहीं। इसी कारण युग–युग में अवतारों, महापुरुषों और विभूतियों का आविर्भाव होता है, और वे देश और धर्म के प्रयोजन के अनुसार आवश्यक सत्य का प्रचार कर जाते हैं; उनकी उसी शिक्षा का अवलम्बन करके मानव–जाति अपने गन्तव्य पथपर अग्रसर होती है। गीता में श्रीकृष्ण ने कहा है– 'हे अर्जुन! मेरे अनेक जन्म हो चुके हैं।' श्रीकृष्ण ने एक ही शिक्षा, एक ही भाव का प्रचार करने के लिए बार–बार जन्म ग्रहण किया हो, यह सम्भव नहीं। अतएव जो लोग यह कहते हैं कि हमारे धर्मग्रन्थ में ही सब सत्य निहित है अथवा हम जिन अवतार, पैगम्बर या प्रॉफेट की पूजा करते है, उनकी शिक्षा को छोड़कर और कुछ भी जानने, समझने, अनुसरण करने योग्य नहीं, वे निश्चय ही भूल करते हैं। यह सुख की बात है कि आजकल मनुष्य समाज में इस प्रकार की कट्टरता, संकीर्णता, असहिष्णुता बहुत कुछ कम हो गई है। जीव–जगत में जैसे क्रमविकास होता है वैसे ही धर्मसाधना, अध्यात्मसाधना के जगत् में भी एक क्रमविकास, क्रमविवर्तन की धारा चलती है, यह बात आजकल प्रायः सभी लोग मानने लगे हैं। भारत में इस साधना का विकास किस प्रकार से होता आया है, इसका पर्यालोचन करने से सम्भवतः श्रीअरविन्द की शिक्षा का मर्म समझना अपेक्षाकृत सहज हो सकता है।

भारत में अध्यात्मसाधना का मूल सूत्र हाथ में आ गया था वेद और उपनिषद् के युग में। वैदिक ऋषियो ने इस दृश्य जगत के पीछे देवलोक को देख था। देवताओं के साथ आदान–प्रदान का सम्बन्ध स्थापित करके मनुष्य का जीवन दिव्य रूप में परिणत किया जा

सकता है और यही मानव-जीवन का वास्तविक लक्ष्य है-इसी सत्य को अवलम्बन करके भारतीय शिक्षा-दीक्षा और भारतीय साधना का आरम्भ हुआ। इस सत्य की दो दिशाएँ हैं- पहली दिशा यह है कि मनुष्य इस समय जिस रूप में जीवन-यापन कर रहा है, वह दुःख, द्वन्द्व, अशान्ति और मत्यु से पूर्ण है, उससे अर्थात् 'मृत्युसंसारसागरात्' ऊपर उठना होगा। पर उठकर कहाँ जाना होगा? मनुष्य जिस भगवान से आया है, जिसके अन्दर ही वह रहता है, जिससे मनसा वियुक्त होने के कारण अनेक दुःखों और क्लेशों को भोग रहा है, उसी के साथ ज्ञानपूर्वक युक्त होना होगा- उसकी ज्योति, शक्ति और आनन्द के अन्दर चिर-प्रतिष्ठित होना होगा। पहली बात के लिए चाहिए सांसारिक जीवन के प्रति तीव्र वैराग्य, दूसरी के लिए चाहिए भगवान की उपासना और ये दोनों ही परस्पर सापेक्ष हैं, एक के द्वारा दूसरे को सहायता मिलती है। वैदिक युग में इस साधना के दो अंग थे, ज्ञान और कर्म। क्रमशः ये दोनों अंग दो साधन-पथों के रूप में परिणत हो गये। किसी के मत से ज्ञान के द्वारा ही मनुष्य अपने लक्ष्य पर पहुँच सकता है और कर्म तो मनुष्य को सांसारिक जीवन में बाँध रखता है। किसी के मत से कर्म के द्वारा ही मनुष्य परमार्थ लाभ कर सकता है। गीता में इन दोनों पथों में भेद दिखाया गया है-

ज्ञानयोगेन सांख्यानां कर्मयोगेन योगिनाम्।।

वेद के युग से आगे चलकर अध्यात्मसाधना में एक और विशेषता उपस्थित हो गई। वैदिक ऋषियों ने चाहा था इस मानव जीवन को ही दिव्य रूप में रूपान्तरित कर देना। किन्तु परवर्ती युग में साधना का लक्ष्य यह नहीं रहा। मानव-जीवन-संसार-दुःखमय है, इससे किसी प्रकार बाहर निकलकर आत्मा के अन्दर मोक्ष या निर्वाण लाभ करना ही साधना का लक्ष्य बना। गीता में इन सब विरोधी मतों और पन्थों में एक प्रकार का अपूर्व समन्वय किया गया है। गीता में कहा है, ज्ञान और कर्म विरोधी मार्ग नहीं हैं। पक्षी जिस प्रकार उड़ने के लिये दोनों पंखों की सहायता ग्रहण करता है, मनुष्य भी उसी प्रकार एक ही काल में ज्ञान और कर्म के समुच्चय के द्वारा लक्ष्य की ओर द्रुत गति से अग्रसर होता है। किन्तु गीता में यह दिखाया गया है कि भगवद्भक्ति में ही ज्ञान और कर्म की पूर्णता होती है। कर्म, ज्ञान, भक्ति-इन तीनों का समन्वय जिस साधना में है, गीता के मत से वही सिद्धि-प्राप्ति का उत्कृष्ट पथ है। गीता यह और कहती है कि मोक्ष-प्राप्ति का उत्कृष्ट पथ है। गीता यह और कहती है कि मोक्ष-प्राप्ति के लिए मनुष्य को यह जीवन, यह देह छोड़कर कहीं जाना नहीं होगा, मृत्यु के पूर्व 'इहैव'- इसी शरीर में मनुष्य भगवान के साथ पूर्णरूपेण युक्त होकर उनका साधर्म्य प्राप्त कर सकता है। उस समय वह चाहे जहाँ रहे और चाहे जो करे, उसके पतन की फिर कोई आशंका नहीं रहती-

सर्वथा वर्तमानोऽपि स योगी मयि वर्तते।

परन्तु भगवान के साथ साधर्म्य प्राप्त करने के रहस्य का विस्तार गीता में नहीं किया

गया है– उसका केवल संकेत मात्र है। उस समय लोगों का झुकाव उपनिषद् और दर्शनशास्त्रों की शिक्षा के फलस्वरूप संसार–त्याग, जीवन–त्याग, कर्म–त्याग की ओर था, गीता ने उसका प्रतिवाद करके जीवन और कर्म की महिमा का प्रचार किया। अर्जुन ने मोह के वश होकर कर्म का त्याग करके सन्यास का अवलम्बन करना चाहा था, उनका तीव्र भाषा में तिरस्कार करके ही गीता में श्रीकृष्ण की शिक्षा का आरम्भ हुआ है। श्रीकृष्ण ने समझा दिया कि भीतर की वासना, कामना, आसक्ति का त्याग ही वास्तविक वैराग्य और सन्यास है, इस कारण जीवन, कर्म, संसार के त्याग की कोई आवश्यकता नहीं। किन्तु पहले बौद्धधर्म के प्रभाव से और पीछे आचार्य शंकर द्वारा आपामर जनसाधारण के अन्दर बढ़े। जोरों से मायावाद का प्रचार हो जाने के कारण गीता की यह शिक्षा भारतवासियों के जीवन में अपने प्रभाव का पूर्ण विस्तार न कर सकी। अवश्य ही भारत के जातीय जीवन के गठन में शंकराचार्य के उपकार का मूल्य बहुत अधिक है। बौद्धधर्म के प्रभाव से जिस समय भारतवासियों की आस्था वेद और उपनिषदों पर से उठ रही थी, उस समय आचार्य शंकर ने उसका प्रतिरोध किया, भारतीय शिक्षा–दीक्षा की मूल धारा की रक्षा की और हिन्दूसमाज, हिन्दूधर्म जो अनेक भेदों और विवादों से विछिन्न हो गया था उसको उन्होंने सब मतों और उपासनाओं से ऐक्य दिखाकर उसे आसन्नध्वंस से बचाया, भारत के साधनागत ऐक्य को पुनः प्रतिष्ठित किया और उसके आगे बढ़ने का पथ परिष्कृत कर दिया। परंतु बौद्ध–प्रभाव को दूर करने पर भी वह प्रभाव कुछ–न–कुछ रह ही गया। बौद्ध जिस शिक्षा का प्रचार करते थे, शंकर के वेदोपनिषद् गीता के भाष्यों से उसी शिक्षा का प्रचार हुआ–यह संसार माया है, मिथ्या है, इस संसार से दूर हटकर आत्मा के अन्दर, ब्रह्म के अन्दर लीन होना ही परम पुरुषार्थ है और इसके लिये ज्ञान ही श्रेष्ठ साधना है। यही शंकर की शिक्षा का मूल तत्व है और इसमें और बौद्धों की शिक्षा में मूलतः विशेष कोई अन्तर नहीं है। भारतवासियों के जीवन पर शंकर की शिक्षा का प्रभाव बहुत अधिक पड़ा, फिर भी सबने उनका मत नहीं ग्रहण किया। अनेक साधक महापुरुषों ने ज्ञान की अपेक्षा भक्ति को ही साधना के रूप में श्रेष्ठ स्थान प्रदान किया। इस भक्तिमार्ग का चरम विकास हम देखते हैं श्रीचैतन्य में। वैष्णव कवि का गान है–

यदि गौरांग ना हत कि मेने हइत

हेमने धरित दे रे?

श्रीराधा महिमा रससिंधु सीमा

जगते जानात के रे?

किन्तु यह जो भक्ति की साधना है, इसका भी लक्ष्य है सांसारिक जीवन का परित्यागकर संसार से ऊपर गोलोक अथवा बैकुण्ठ में जाकर श्रीभगवान के साथ संयुक्त होना। प्राचीन काल से भारत में जो ये तीन प्रकार की साधनाएं चली आ रही है–कर्मयोग, ज्ञानयोग और भक्तियोग, इन तीनों का लक्ष्य दुःखमय सांसारिक जीवन से ऊपर उठकर

ब्रह्म में लीन होना अथवा भगवान के साथ युक्त होना है। किन्तु इस पृथ्वी पर मानव-जीवन के अन्दर रहकर ही भगवान के साथ साधर्म्य प्राप्त करने का जो उपदेश हम गीता के अन्दर पाते हैं, अद्यावधि वह कहीं भी परिस्फुटित नहीं हुआ। इस विषय में कुछ प्रयत्न हुआ था तान्त्रिक साधना में। अध्यात्मजीवन प्राप्त करने में जो-जो बातें बाधक समझी जाती हैं, उन्हीं का व्यवहार साधना में सहायक रूप से करके जीवन को दिव्यरूप में पलट देने का जो आदर्श तान्त्रिकसाधना में दिखाई पड़ा था, वह व्यभिचार और दुरुपयोग के कारण भारत के जातीय जीवन पर बहुत अधिक प्रभाव न डाल सका, यद्यपि इसके सारतत्व ने बहुत कुछ अंश में बंगाल की शक्तिपूजा के अन्दर स्थान प्राप्त किया है।

भारत में युग-युग में इस प्रकार नाना प्रकार की साधन पद्धतियों का अनुसरण किया गया है। जगत् में अध्यात्मसाधना की ऐसी कोई धारा नहीं दिखाई पड़ती, जिसकी चरम परीक्षा इस भारतभूमि में न हुई हो। इस प्रकार भारत में अध्यात्मसाधना का ऐसा उत्तम क्षेत्र और वायुमण्डल बन गया है कि पृथ्वी के और किसी स्थान में ऐसा नहीं दिखाई पड़ता। परंतु सब अध्यात्मसाधनाओं का मूल लक्ष्य संसारत्याग, जीवनत्याग की ओर होने से ऐहिक जीवन में भारत की बड़ी क्षति हुई, जीवनसंग्राम में भारत अन्यान्य जातियों से बहुत पीछे पड़ गया, और इसी कारण से भारत की अध्यात्मसाधना पर से बहुत लोगों की श्रद्धा ही उठ गयी। जिस समय भारत पाश्चात्य-जाति के संस्पर्श में आया, पाश्चात्य-जाति ने अपनी असीम कर्मशक्ति और वसुन्धरा का भोग करने की दुर्निवार आकांक्षा के बल से भारत पर अपना आधिपत्य स्थापित किया, उस समय भारत के बहुत से लोग उसी आदर्श की ओर झुक पड़े थे और सब विषयों में पाश्चात्य-जड़वादी सभ्यता का अनुसरण करने के आग्रह के कारण आत्मविस्मृत हो गये। भारत के लिए वह बड़े ही संकट का युग था-राजनीतिक क्षेत्र में भारत पराधीन था, अध्यात्मसाधना के क्षेत्र पर भी नाना प्रकार से ग्लानि छायी हुई थी, बाह्याचार और प्रचलित रूढ़ियों को ही लोगों ने धर्म और आध्यात्मिकता की सीमा मानकर अन्धभाव से पकड़ रखा था। इससे जीवन के सब क्षेत्रों में अधःपतन और मृत्यु के लक्षण दिखाई पड़ते थे और दूसरी ओर पाश्चात्य-जाति का तीव्र जीवन्त आदर्श चमक रहा था। उस आदर्श की ओर झुक पड़ने के कारण जिस समय अपना स्वधर्म छोड़ने और परधर्म ग्रहण करने का आग्रह इस देश में बढ़ रहा था, उसी सन्धिक्षण में परमहंस श्रीरामकृष्ण आविर्भूत हुए। उन्होंने अपने जीवन में सब प्रकार की साधन-पद्धतियों की सत्यता प्रत्यक्ष करके यह दिखा दिया कि भारत की अध्यात्मसाधना मिथ्या, धोखेबाजी या कपट नहीं है, इसके अन्दर असीम शक्ति निहित है, इसी के द्वारा मनुष्य अपने जीवन को सार्थक कर सकता है। पाश्चात्य रंग की बाढ़ में भारत जिस समय डूबा हुआ था, उसी समय श्रीरामकृष्ण के प्रिय शिष्य स्वामी विवेकानन्द भारत का रंग लेकर पाश्चात्य-सभ्यता के मर्मस्थल में जा धमके। बहुत काल के बाद पुनः भारत की विजय-यात्रा आरम्भ हुई। यह जो स्वामी विवेकानन्द ने प्रत्याक्रमण से

पाश्चात्य–सभ्यता के आक्रमण का उत्तर दिया, उसी दिन से भारत के नवयुग का सूत्रपात हुआ। भारत पुनः अपनी वास्तविक शक्ति की खोज में प्रवृत्त हुआ। भारत की अध्यात्मसाधना नवीन गौरव के साथ संसारवासियों के सामने उद्भासित हुई।

श्रीरामकृष्ण ने यह दिखाया कि ज्ञानयोग, कर्मयोग, भक्तियोग, यहाँ तक कि ईसाई–धर्म, मुसलमान–धर्म आदि सब साधनाओं और सब धर्मों में सत्य है, मूलतः इनके अन्दर कोई भी विरोध नहीं। जितने मत हैं उतने मार्ग हैं–सब मार्गों से उसी एक गन्तव्य स्थान पर पहुँचा जाता है। श्रीरामकृष्ण ने सब साधनाओं का मूलगत ऐक्य दिखा दिया, पर उस ऐक्य के आधार पर अवलम्बित, सब साधनाओं की मूल शक्ति का आश्रय करने वाला जो सर्वयोगसमन्वय साधन है, वह श्रीअरविन्द की साधना में परिस्फुटित हुआ है। और इसमें केवल साधन–पद्धति का ही नहीं, अध्यात्म साधना का जो लक्ष्य है, उसका भी पूर्ण समन्वय साधित हुआ है। मनुष्य अभी जैसा जीवन व्यतीत करता है, उसको छोड़कर ऊपर उठना होगा। इसका अर्थ यह नहीं कि मानवजीवन–मानवजन्म का ही त्याग करके निस्पन्द, निश्चल ब्रह्म के अन्दर लीन होना होगा। यह संसार मिथ्या, माया है, 'भगवान की भूल' है–ऐसा तो श्रीअरविन्द नहीं कहते। मनुष्य के अन्दर जो देवत्व निहित है, उसको देह, प्राण, मन में पूर्ण विकसित करना होगा, मानवजीवन को दिव्य जीवन में रूपान्तरित करना होगा, जरा, व्याधि, मृत्यु को जीतकर अमृतत्व लाभ करना होगा, यही मानव जन्म का प्रकृत अर्थ है और यही सब अध्यात्मसाधनाओं का वास्तविक लक्ष्य है। किन्तु मनुष्य जब तक मन के स्तर में ही अटका है तब तक उसका यह रूपान्तर सम्भव नहीं। उच्च जीवन प्राप्त करने के लिए मनुष्य को अहंभाव का त्याग करना होगा, वासना–कामना का त्याग करना होगा, परंतु मन के क्षेत्र में रहकर ऐसे त्याग की पूर्णता का अर्थ होता है आत्मा के अन्दर अपना निर्वाण कर देना–संसार, जीवन, कर्म आदि का कुछ भी न रह जाना। यदि अहंभाव को रखते हैं तो उसका अर्थ होता है ऐसे जीवन के जो चिरसंगी हैं अर्थात् त्रुटिग्लानि दुःखादि द्वन्द्व और जरा और मृत्यु–उन्हें पाल रखना। इस प्रहेलिका का समाधान करते हैं श्रीअरविन्द एक पर–तत्व के प्रकाश में जिसका नाम श्रीअरविन्द ने सुपर माइन्ड (परा–विज्ञान) रखा है। मनुष्य के अन्दर जब तक उस 'अतिमानस' विज्ञान सत्ता का आविर्भाव नहीं होता तब तक मानव–जीवन को दिव्य रूप में रूपान्तरित करना सम्भव नहीं। मन–बुद्धि की शक्ति से मनुष्य कितनी दूर ऊपर उठ सकता है, उसके उत्कृष्ट दृष्टान्त इस युग में महात्मा गांधी हैं। वह सत्य, अहिंसा, ब्रह्मचर्य आदि कुछ आदर्शों को ग्रहण कर उनके अनुसार जीवन को गठित करने की साधना करते हैं। पर अपनी आजीवन साधना के फलस्वरूप वह अब तक इसी सिद्धान्त पर पहुँचे हैं कि देहधारी मनुष्य कभी इन सब विषयों में पूर्ण सिद्धि नहीं प्राप्त कर सकता। उन्होंने स्पष्ट शब्दों में कहा है कि मृत्यु की अन्तिम घड़ी तक अत्यन्त सावधानी के साथ इन सब नियमों का पालन करते रहना चाहिए, नहीं तो किसी भी क्षण में शिथिलता आ

जाने पर सब साधना नष्ट हो सकती है। किन्तु इस प्रकार सर्वदा सजग होकर पहरा देते हुए कितने आदमी रह सकते हैं? इसी से अध्यात्मसाधना का लक्ष्य है इस अवस्था के भी ऊपर उठकर ऐसी अवस्था प्राप्त करना जहाँ से फिर किसी तरह पतन न हो। श्रीरामकृष्ण ने एक सुन्दर दृष्टान्त देकर यह समझाया था। पीतल का बर्तन सर्वदा यदि माँजा–धोया न जावे तो मैला हो जाता है, पर उसको सोने में पलट देने पर फिर मैला होने का भय नहीं रहता। मनुष्यजीवन रूप पीतल का बर्तन जिस विधि से सोने में परिणत किया जा सकता है, वही श्रीअरविन्द का पूर्णयोग है। केवल मनुष्य की चेष्टा से ऐसा होना सम्भव नहीं है। मनुष्य साधना के द्वारा अपने को केवल उस रूपान्तर के योग्य बना सकता है, रूपान्तर के लिए ऊपर से पारसमणि का ही स्पर्श होना चाहिए। श्रीअरविन्द ने योगलब्ध दिव्यदृष्टि से देखा है कि वह स्पर्श ऊपर से उतर रहा है, मानव–जीवन जिस शुभ मुहूर्त में दिव्य जीवन के रूप में, स्वर्ण में, परिणत होगा, वह निकट है। मनुष्य को अपने अन्दर केवल उस स्पर्श को प्राप्त करने की अभिलाषा जागरित कर रखनी होगी, उस स्पर्श को ग्रहण करने के लिये देह, प्राण, मन को प्रस्तुत कर रखना होगा। किस रूप में उस परम रूपान्तर के लिए अपने को प्रस्तुत किया जा सकता है, यही हम श्रीअरविन्द के चरणों में बैठकर सीख रहे हैं।

●●●

संत की आदर्श क्षमाशीलता

एक संत कहीं जा रहे थे। एक दुष्ट व्यक्ति भी उन्हें गालियाँ देता हुआ उनके पीछे–पीछे चलता जा रहा था। संत ने उससे कुछ भी न कहा। वे बहुत देर तक चुपचाप ही चलते रहे। पर्याप्त आगे बढ़ने पर कुछ घर दिखायी पड़ने लगे। अब वे खड़े हो गये और उन्होंने उस व्यक्ति से कहा– 'भाई! देखो! तुम्हें जो कुछ कहना है, यहीं कह लो। मैं खड़ा हूँ। आगे उन घरों में मुझ से सहानुभूति रखने वाले लोग रहते हैं। वे तुम्हारी बातें सुनेंगे तो तुम्हें तंग कर सकते हैं। इससे मुझे बड़ा क्लेश होगा।'

इस पर वह दुष्ट व्यक्ति संत के इस आशा के विपरीत व्यवहार को देखकर बड़ा लज्जित हुआ और पश्चाताप पूर्वक क्षमा माँगने लगा।

योग का तात्पर्य और चरित्र-निर्माण

गोरक्षपीठाधीश्वर महन्त श्रीअवैद्यनाथजी महाराज

योग के सामान्य धरातल पर उसकी साधना के षडङ्ग, अष्टाङ्ग, पंचशाङ्ग आदि भेद निर्दिष्ट हैं। पर ये सभी स्तर मानव–जीवन और मानव के चरित्र निर्माण के लिए अचल आधार हैं। इनमें यम–नियम के संयमपूर्वक सेवन से चरित्र उदात्त, पवित्र और प्रसादयुक्त होकर श्रेय की प्राप्ति में महनीय भूमिका की स्थापना करता है। योगरूप प्रधान विद्युत्शक्ति केन्द्र, अलखनिरंजन परमात्मा के सत्–स्वरूप से, निरंजन से जीवन की कल्याणमयी मंगलज्योति प्रवाहित होती रहती है और योग साधनाएं तथा यम–नियमादि योग के विभिन्न अंग–उपांग सभी उस केन्द्रीय शक्ति–गृह से युक्त होकर मानव को कल्मषरहित पुण्य जीवनयापन तथा आत्मदर्शन और परमात्मसाक्षात्कार की प्रेरणा देते रहते हैं। चरित्र–निर्माण की दिशा में यही योग का परम तात्पर्य अथवा श्रेयस्कर कार्य है। महायोगी गोरखनाथ जी ने एक सबदी में चरित्र निर्माण का सम्पूर्ण रहस्य योगसाधक के लिए भर दिया है। उनका यह अमृतवचन सम्पूर्ण मानवता के लिये पवित्र चरित्र की प्रेरणा देता है। यह गोरखबानी 7वीं सदी की है जो इस प्रकार है–

हसिबा खेलिबा रहिबा रंग। काम क्रोध न करिबा संग।
हसिबा खेलिबा गाइबा गीत। दिढ़ करि राखि आपना चीत।।

योगी को सदैव आत्मसंयम करना चाहिए। योग का आधार ही नहीं, स्वरूप भी चित्तवृत्ति का निरोध है। संसार में जन्म लेने वाले प्राणी के लिये यह उचित है कि वह आनन्दपूर्वक समस्त सुखों का भोग करता हुआ भी उनमें अनासक्त रहे। इससे उसकी आत्मस्वरूप में स्थिति निरन्तर बनी रहती है। उसे काम और क्रोध से दूर रहना चाहिए, क्योंकि काम और क्रोध से ही प्राणी अविद्या–अन्धकार और ममत्व के बन्धन में आसक्त होने पर आत्मविस्मरण का शिकार हो जाता है। जीवन को व्यर्थ नहीं जाने देना चाहिए। मनुष्य का यह कर्तव्य है कि वह जीवन की सत्यता से, कर्तव्य–पालन से, विमुख न हो, अनासक्त भाव से जीवन के समस्त ऐश्वर्य–वैभव का भोग करता हुआ भी आत्मसंयम में रहे और मन पर नियन्त्रण रखे। यही गीता की भाषा में –**'योगः कर्मसु कौशलम्'** कार्य बन्धन से बच निकलने का मार्ग और युक्ताहारविहार मय निर्द्वन्द्व संतुलित स्थितिरूप **'समत्वयोग'** है। यह समत्वयोग ही चरित्र–निर्माण का केन्द्रीय प्रकाशगृह है। इससे संग अथवा आसक्ति का अपने–आप त्याग हो जाता है और जीवन में निर्मलता का अमृत प्रवाहित होता है। यही योगस्थ कार्यसम्पादन है, जिससे चरित्रनिर्माण में सहायता सुलभ होती है। भगवान कृष्ण का

कथन है–

योगस्थः कुरु कर्माणि सङ्गं त्यक्त्वा धनंजय।
सिद्ध्यसिद्ध्योः समो भूत्वा समत्वं योग उच्यते।।
तस्माद् योगाय युज्यस्व योगः कर्मसु कौशलम्।।

(गीता 2/48,50)

मनुष्य–जीवन की सार्थकता यही है कि उसका उचित सदुपयोग हो, वह व्यर्थ और निष्फल न चला जाये। जन्म से लेकर मरण–पर्यन्त समस्त संस्कारों को शास्त्रसम्मत ढंग से अपने जीवन में प्रस्तुत करते हुए अनासक्त होकर जीवात्मा परमात्मा के ध्यान और स्वरूप चिन्तन में तत्पर रहे। नाथ–पंथ के सिद्धामृत–मार्ग में योगसाधनागत पवित्र चरित्र–निर्माण का यही अमृत फल है कि मनुष्य परमात्मपद–परमात्मस्वरूप में प्रतिष्ठित हो जाये। हमारे मत में पवित्र चरित्र के द्वारा नाथ–स्वरूप अथवा शिवस्वरूप की प्राप्ति ही लक्ष्य है।

नाथ योग में चरित्र निर्माण की दिशा में अहिंसा, सत्य, अस्तेय, ब्रह्मचर्य, दया, धृति, क्षमा, आर्जव, मिताहार और शौचस्वरूप दस यमों का निर्देश है तथा इन यमों के संयम की दिशा में साधक अथवा मनुष्य मात्र के लिये तप, संतोष, आस्तिक्य, दान, ईश्वरपूजन, सिद्धान्त वाक्यश्रवण, ह्री, मति, जप और हवन दस नियम आवश्यक हैं। नाथयोग के अप्रतिम साधनाग्रन्थ हठयोग–प्रदीपिका में यम–नियम की चरित्र निर्माण के लिये स्थापना की गई है–

अहिंसा सत्यमस्तेयं ब्रह्मचर्यं क्षमा धृतिः।
दयार्जवं मिताहारः शौचं चैव यमा दश।।
तपः संतोष आस्तिक्यं दानमीश्वरपूजनम्।
सिद्धान्तवाक्यश्रवणं ह्रीमती च जपो हुतम्।
नियमा दश सम्प्रोक्ता योगशास्त्रविशारदैः।।

(हठयोगप्रदीपिका 1/17–18)

ये दस यम–नियम योग के शेष छः उपांगों के पोषक हैं। आसनसिद्ध योगी अथवा साधक अथवा मनुष्य शीत–उष्ण, क्षुतिपासा और आलस्य–तन्द्रा आदि द्वन्द्वों पर विजय पा लेता है। श्वास–प्रश्वास की गतियों में विच्छेद ही प्राणायाम है। इसके द्वारा मन को स्थिर करने की शक्ति प्राप्त होती है और शरीर में चैतन्य का प्रवाह अनवरत होता रहता है। सतर्कतापूर्वक मन और इन्द्रियों को वाह्य–विषयों के संस्पर्श से दूर रखकर आन्तरभाव में उन्हें प्रयुक्त करना ही प्रत्याहार है। धारणा, ध्यान और समाधि को अनेकविध बाह्य–आन्तर विषयों में प्रयुक्त करके विभिन्न प्रकार की सिद्धियाँ और उपलब्धियाँ प्राप्त की जाती हैं। किसी निश्चित वस्तु पर ध्यान को केन्द्रित करने की प्रक्रिया को 'धारणा' कहते हैं। जब चित्त

प्रकार की उच्छृङ्खल प्रवृत्तियों से मुक्त हो जाता है, तब धारणा ध्यान की स्थिति में परिवर्तित हो जाती है। ध्यान की प्रगाढ़ स्थिति ही समाधि है। निःसंदेह योग के इस साधना–मार्ग से चरित्र–निर्माण की प्रक्रिया की सम्पूर्ण सिद्धि होती है।

हमारे पुण्यलोक भारत–देश के मनीषियों, महर्षियों और सिद्धों तथा महायोगियों ने सारे विश्व के मानवों को वेदविहित वर्णाश्रम सम्मत आचार–विचार को जीवन में उतारकर सार्वभौम श्रेय की प्राप्ति की सत्प्रेरणा प्रदान की है। गोरक्षमहायोगी गोरखनाथ ने अपने अनुभव सिद्ध 'सिद्धसिद्धान्तपद्धति' नामक योगशास्त्र में कहा है– **सदाचारतत्त्वे ब्राह्मणास्तिष्ठन्ति, शौर्ये क्षत्रिया, व्यवसाये वैश्या:, सेवाभावे शूद्राश्च।**

(सिद्धसिद्धान्तपद्धति 3/6)

इसका आशय यह है कि सदाचार, शौर्य, व्यवसाय और सेवा भाव ही समग्र मानव के लिए स्वधर्म है जिसके द्वारा जीवन की उन्नति होती है, चरित्र का निर्माण और विकास होता है। ब्राह्मण से शूद्र अनुक्रम में किसी वर्ण की हीनता या विशेष प्रतिष्ठा का द्योतन नहीं है, यह एक मानवीय क्रम है, जिसमें जो मनुष्य सदाचारी है जो शौर्य में लगता है, जो व्यसाय कर राष्ट्र की समृद्धि बढ़ाता है और अपनी सेवा के द्वारा सामाजिक श्रेय का प्रतिपादन करता है, वही चरित्रवान् है। वही संस्कृत और शिष्ट है। मनुष्यमात्र में वर्गीय अथवा जातीय भेदभाव की स्थापना तो निरर्थक है, सार्थकता यह है कि सभी मनुष्य एक–दूसरे के आत्मसम्बन्धी हैं और सभी के हृदय में परमात्मा और उसकी ज्योति प्रकाशित है। वास्तव में यही कर्मयोग है, जिसमें सत्य की पूर्ण प्रतिष्ठा है। कर्मयोग, भक्तियोग, ज्ञानयोग सब एक दूसरे से सम्बद्ध हैं और इनमें सत्य–प्राप्ति की प्रतिष्ठा है। महायोगी गोरखनाथ जी ने कहा है–

सत्यमेकमजं नित्यमनन्तं चाक्षयं ध्रुवम्।
ज्ञात्वा यस्तु वदेद्धीरः सत्यवादी स कथ्यते।।

(सिद्धसिद्धान्तपद्धति 6/60)

जीवन में चरित्र में सत्य ही अमृत है। इस सत्य से ही चरित्र–निर्माण का तात्पर्य सम्पादित होता है।

यदिदं किं च तत्सत्यमित्याचक्षते।

(तैत्तिरीयोपनिषद् 2/6/1)

सत्य सर्वाश्रय है, परमात्मा अक्षय और सनातन है, यही चरित्र–निर्माण का सर्वोपरि शक्तिकेन्द्र है, जिससे जीवात्मा अमृतत्व में प्रतिष्ठित होता है। सत्यप्राप्ति ही चरित्र की गरिमा है।

●●●

आन्तरिक शक्ति एवं चरित्र-निर्माण

डा. श्रीयोगेन्द्रनारायणजी मिश्र

विश्व के जितने भी महान व्यक्ति हुए है, उनकी महत्ता किसी शक्ति–बल के कारण नहीं, बल्कि उनके चरित्र–बल के कारण थी। आज राष्ट्रीय चरित्र के ह्रास की बात तो सभी करते है, परन्तु उसमें समाहित अपने दायित्व से प्रायः हम सभी मुकर जाते है। यदि आज की युवा–पीढ़ी दिग्भ्रान्त है, उसमें राष्ट्रीय चरित्र की कमी दिखलायी पड़ती है, तो उसके लिए वह कम तथा प्रबुद्ध एवं प्रौढ़वर्ग ही अधिक दोषी है। चारित्रिक कमजोरी के प्रमुख दो कारण हैं– प्रथम यह कि समाज का प्रबुद्ध एवं श्रेष्ठ वर्ग, जिसके हाथ में समाज का नेतृत्व है, वह अपना आदर्श चरित्र युवावर्ग के समक्ष प्रस्तुत कर सकने में अक्षम और असफल रहा; दूसरे यह कि अधिकतर युवा वर्ग अपनी स्वयं की क्षमता को पहचानने तथा उसका समुचित उपयोग कर सकने के योग्य नहीं बन पा रहा है। अतः उससे जो अपेक्षाएँ की जाती हैं, उनका उसे भान तक नहीं है। अतः आवश्यकता इस बात की है कि हम अपने अन्दर सही नेतृत्व दे सकने की क्षमता का विकास करें तथा इस प्रकार के वातावरण के सृजन में सहयोग करें जिसके अन्तर्गत युवा वर्ग अपनी अन्तःशक्ति को पहचान सके और उसका उपयोग कर अपना तथा राष्ट्र का विकास कर सके।

प्रारम्भ से ही हमारी शिक्षा के स्रोत अरण्य रहे हैं। वे आज भी हो सकते है। इसका तात्पर्य यह नहीं कि हमें जंगलों में जाने की आवश्यकता है। हम समाज में रहकर भी पेड़–पौधों से शिक्षा तो ग्रहण कर ही सकते है। वृक्ष सूर्य की किरणों से, वायु से, जल से अपनी खुराक लेता है, जड़ों को मजबूत बनाता है; उसी से वह अपना समुचित विकास करता है। वृक्ष के रूप में विकसित होकर अपना लाभ औरों को देता है; यही स्थिति हमारी अपनी भी होनी चाहिए। शरीर के अन्दर आत्मा है। आत्मा परमात्मा का अंश होने के कारण पूर्णतः अत्यन्त शक्तिशाली है। उसका सीधा सम्बन्ध परमात्मा से है। यदि लोग अपनी इस शक्ति को पहचान लें और परमात्मा का संस्मरण कर अपने कर्तव्यों का निष्पादन करें तो कहीं भी जाति, धर्म, संस्कृति आदि की विभिन्नता के कारण बिलगाव या विघटनकारी तत्वों का अभ्युदय न हो। हम अपनी आत्मशक्ति को न पहचानने तथा उस आदि स्रोत के प्रति निष्ठा के अभाव के कारण भ्रान्त हो जाते हैं, चक्कर लगाते रहते हैं हमारा विकास उस सीमा तक तथा उस दिशा में नहीं हो पाता, जिसके लिये हम पूर्ण रूप से क्षमता और योग्यता रखते है। लोगों की विशेषताएं उनके अन्दर छिपी रहती हैं। वे न तो उसका लाभ स्वयं उठा पाते हैं और न समाज को ही दे पाते हैं। ऐसा माना गया है कि प्रत्येक व्यक्ति के पास कुछ–न–कुछ अद्भुत

क्षमता होती है। इस क्षमता की जानकारी जिसको जितनी जल्दी हो पाती है, वह उतनी ही जल्दी संसार का, उस क्षेत्र का सर्वश्रेष्ठ व्यक्ति बन जाता है। किंतु अन्य जन ऐसे ही अपना पूर्ण जीवन व्यर्थ में व्यतीत कर देते हैं। अत: आवश्यकता इस बात की है कि लोगों का ध्यान उनकी विशिष्टताओं की ओर ले जाया जाये। इससे जहाँ उनकी छिपी शक्ति उभर कर ऊपर आयेगी तथा उससे समाज लाभान्वित होगा, वहाँ उसकी अनुपस्थिति के कारण पनपनेवाली चारित्रिक कमजोरियां भी घटेंगी। उन्नतिशील शक्ति का विकास और अवनतिशील शक्ति का ह्रास चरित्रनिर्माण के लिये आवश्यक वस्तुतत्त्व है।

व्यक्ति के व्यक्तित्व का विकास समाज में होता है। विकास के लिए वातावरण प्रदान करना समाज की जिम्मेदारी है तथा व्यक्ति को विकसित होकर अपने गुणों का लाभ समाज को देना उसका कर्तव्य है। उसका समाज से अलग हटकर कोई महत्व नहीं होता। आज स्थिति बिल्कुल विपरीत है। सामाजिक दायित्वों से हटकर व्यक्ति अपने "स्व" पर आ गया है। वह समाज से हट गया है, इससे न तो उसका विकास ही हो पा रहा है और न उसकी क्षमताओं का लाभ ही समाज को मिल पा रहा है। यह स्थिति अच्छी नहीं कही जा सकती। अत: हमें उन परिस्थितियों का निर्माण करना होगा, जिनमें व्यक्तियों का पूर्ण विकास हो। इससे समाज को उनका समुचित लाभ मिल सकेगा। यह तभी सम्भव है, जब हम अपनी आन्तरिक शक्ति को पहचानें तथा उसके बल पर अपने विकास का प्रयास करें। परिवार ही वह इकाई है जहाँ से इसका प्रारम्भ किया जा सकता है। प्रत्येक परिवार का मुखिया तथा अन्य बड़े लोग अपने आचरण को अनुकरणीय बनायें। ऐसा करने में कुछ लोगों को कुछ समय तक कठिनाइयों का सामना करना पड़ सकता है। परन्तु आगे चलकर उसके सुपरिणाम अवश्य निकलेंगे तथा भावी पीढ़ी भी दिग्भ्रान्त होने से बच सकेगी।

चरित्र-निर्माण की चुनौती हमारे समक्ष है। इसके अभाव में व्यक्ति और समाज दोनों ही कष्ट में हैं। इसका समाधान हम करना नहीं चाहते। यदि चाहें तो कार्य कठिन नहीं है। **जीवन का महत्व त्याग में है।** त्यागमय जीवन से थोड़े समय के लिए कठिनाई अवश्य हो सकती है, परन्तु आगे उससे लाभ ही मिलना है। इसके लिये हमें अपनी ही शक्ति को पहचानना है तथा उसी पर अपने तथा समाज के विकास के लिये निर्भर रहना है। अपनी आन्तरिक शक्ति को पहचान लेने पर हमें किसी बाह्य शक्ति के सहारे की आवश्यकता नहीं होगी। यह आत्मशक्ति ही सुदृढ़ चरित्र प्रदान करेगी जो व्यक्ति, समाज और राष्ट्र को आगे बढ़ाने में सहायक होगी। अत: आत्मशक्ति को पहचानो, उठो, जागो, बड़ों के पास जाकर समझो-बूझो- **'उत्तिष्ठत जाग्रत, प्राप्य वरान्निबोधत।'**

●●●

सफल जीवन के लिये उपयोगी बातें

● भगवान् हमें जो भी वस्तुएँ देते हैं, वे सदुपयोग करने के लिये ही देते हैं, अधिकार जमाकर दुरुपयोग के लिये नहीं।

● किसी भी मनुष्य का जीवन दूसरों की सहायता के बिना नहीं चल सकता। जैसे-शरीर का पालन-पोषण माता-पिता करते हैं, शिक्षा गुरुजनों से मिलती है, अन्न दूसरों द्वारा उपजाया होता है, वस्त्र भी दूसरों द्वारा बनाये हुए होते हैं तथा जिस सड़क, मोटर वाहन आदि के द्वारा हम एक स्थान से दूसरे स्थान को जाते हैं, वे भी दूसरों द्वारा तैयार किये होते हैं। अतः हम पर दूसरों का ऋण किसी-न-किसी रूप में अवश्य रहता है। इसलिये उस ऋण से मुक्त होने के लिये हमें दूसरों का उपकार जरूर करना चाहिए, नहीं तो हम ऋणी रहेंगे।

● यदि श्रेष्ठ पुरुष स्वयं अपने वर्ण, आश्रम के धर्म के अनुसार आचरण न करके केवल प्रमाण मात्र दें, शिक्षा मात्र दें-तो उसका प्रभाव लोगों पर नहीं पड़ेगा। उसका प्रभाव तो तब पड़ेगा, जब वे स्वयं वैसा आचरण करें।

● जिस तरह गतिशील बैलगाड़ी का कोई एक पहिये का टुकड़ा भी यदि खण्डित हो जाये, तो उससे पूरी बैलगाड़ी को झटका लगता है-उसी तरह गतिशील सृष्टि-चक्र में भी यदि कोई एक व्यक्ति कर्तव्यच्युत हो जाये, तो उसका विपरीत प्रभाव सम्पूर्ण सृष्टि पर पड़ता है। इसके विपरीत जैसे शरीर का एक पीड़ित अंग ठीक होने से सम्पूर्ण शरीर का स्वतः हित होता है; वैसे ही अपने कर्तव्य का ठीक-ठीक पालन करने वाले मनुष्य के द्वारा सम्पूर्ण सृष्टि का हित स्वतः होता है।

SIDDHYOG Postal Regd. No.: Ag 19/06-08 JANUARY 2009

मीडिया पोस्ट

हृदय स्पर्शी सेवा

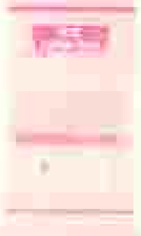

अपने (उत्पाद) को बाजार में स्थापित करने के लिए एक अनोखी एवं प्रभावशाली योजना -

[illegible]

1. [illegible]
2. [illegible]
3. [illegible] रु. 1000 प्रति [illegible] रु. 500.00 प्रति [illegible]
4. [illegible] रु. 5.50 प्रति [illegible]
5. [illegible] रु. 100/- प्रति [illegible]
6. [illegible] रु. 100/- प्रति [illegible] 400/-
7. [illegible] रु. 2/- प्रति [illegible] 25 पैसे मात्र।

प्रेषक कार्यालय :

सिद्धयोग

श्री सिद्धयोग योग प्रशिक्षण केन्द्र

सैंया (एत्मादपुर) आगरा (उ.प्र.)

PRINTED MATTER

BOOK-POST

श्री/सुश्री

संस्थापक :- [illegible] श्री [illegible] जी महाराज। मुद्रक एवं प्रकाशक डॉ. [illegible] शर्मा के लिए राष्ट्रीय [illegible] एवं प्रिंटिंग वर्क्स, आगरा-3 से मुद्रित एवं श्री योग प्रशिक्षण केन्द्र, सैंया (एत्मादपुर) आगरा से प्रकाशित। आर.एन.आई. नं. UPHIN/2004/14586

सम्पादक : आचार्य [illegible] (डॉ.) [illegible] शर्मा